के उद्देश्य

...भाषा का संरक्षण तथा प्रसार।
...ग्रंथों का विवेचन।
...कृति का अनुसंधान।
...न, विज्ञान और कला का पर्यालोचन।

सूचना

सब श्रेणी के सभासदों को, उनके सभासद होने के वर्षारंभ से, सभा की मुख-पत्रिका बिना मूल्य दी जायगी। वे सभासद अपने सभासद होने के वर्षारंभ के अनंतर सभा द्वारा प्रकाशित अन्य सामयिक पत्रिका तथा पुस्तकों की एक एक प्रति ¾ मूल्य पर ले सकते हैं और जितने दिन पुराने वे सभासद होंगे, सभासद होने के उतने दिन पहले तक की प्रकाशित प्रत्येक पुस्तक वा सामयिक पत्रिका की एक एक प्रति इसी मूल्य पर ले सकते हैं। परंतु प्रबंधसमिति को अधिकार होगा कि साधारण सभा की अनुमति से किसी विशेष पुस्तक को इस नियम से बाहर रक्खे।

(सभा का नियम, सं० २१)

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ४४-संवत् १९९६ [नवीन संस्करण] भाग २०-अंक २

प्राचीन हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों की खोज का चौदहवाँ त्रैवार्षिक विवरण

[सन् १९२९-३१ ई०]

लेखक--डाक्टर पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, एम० ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट०

प्रस्तावना

इस रिपोर्ट को आरंभ करने के पहले मुझे खोज विभाग के भूतपूर्व यशस्वी निरीक्षक डा० हीरालाल के स्वर्गवास का उल्लेख बड़े खेद के साथ करना पड़ता है। डाक्टर साहब की मृत्यु से सभा के खोज विभाग की बड़ी क्षति हुई है। आप विगत १७ वर्षों से खोज के कठिन कार्य का निरीक्षण बड़े उत्साह और योग्यतापूर्वक करते आ रहे थे। वे बड़े उदार, सज्जन और कृपालु थे। क्या छोटे, क्या बड़े, सब उनका एकसा सम्मान करते थे। उनकी सेवाओं का आदर सरकार और जनता दोनों करती थीं। कई संस्थाओं को उनका सहयोग प्राप्त था और साहित्य की वे लगन से श्रीवृद्धि किया करते थे। वे एक अवकाश-प्राप्त जिलाधीश थे। यदि चाहते तो अपने जीवन का शेष काल सुख-पूर्वक बिता सकते थे, किंतु वे अंत तक कर्मण्य रहे। परमात्मा उनकी आत्मा को शांति दे।

साधु कवि रतिभान के संबंध में उनके ग्रंथ से बाहर की सूचनाएँ मुझे कालपी के श्रीयुत "रसिकेन्द्र" से प्राप्त हुई हैं। इसलिये वे मेरे धन्यवाद के पात्र हैं।

विवरण

इस रिपोर्ट की कार्यावधि में खोज का कार्य लखनऊ, लखीमपुर, आगरा, हरदोई, उन्नाव, एटा और अलीगढ़ जिलों में हुआ। पं० बाबूराम बित्थरिया तथा पं० छोटेलाल त्रिवेदी ने पहले अन्वेषण का कार्य किया। परंतु बीच में ही बित्थरियाजी दिल्ली प्रांत में शोध का कार्य करने के लिये भेज दिए गए और उनके स्थान पर श्री सुखदेव शास्त्री की नियुक्ति हुई। उनके चले जाने के पश्चात् पं० लक्ष्मीप्रसाद त्रिवेदी उस स्थान पर नियुक्त किए गए।

इस अवधि मे १५२१ हस्तलिखित ग्रंथों के विवरण प्राप्त हुए। इनमें से ४६ ग्रंथ सन् १८८० ई० के पश्चात् के रचे होने के कारण नियमानुसार अस्वीकृत कर दिए गए, और ५ ग्रंथ अन्य भाषाओं के होने के कारण रिपोर्ट मे सम्मिलित नहीं किए गए। इन्हीं विवरणों की संख्या में आगरा नागरी-प्रचारिणी सभा के एजंटों—श्री श्रीनिवास तथा श्री अवधविहारीलाल और जिला रायबरेली के श्री त्रिभुवनराय—के भेजे क्रम से ५० व ३९ समस्त ८९ ग्रंथों के विवरण भी सम्मिलित हैं। अस्वीकृत कार्य को छोड़कर शेष कार्य तीन वर्षों में इस प्रकार विभक्त है—

सन् ईसवी	विवरण लिए हुए ह० लि० ग्रंथों की संख्या
१९२९ ,,	३८३
१९३० ,,	५८८
१९३१ ,,	५११

४९९ ग्रंथकारों के बनाए हुए ८८४ ग्रंथों की १२०३ प्रतियों के विवरण लिए गए हैं, जिनके अतिरिक्त २६७ ग्रंथों के रचयिता अज्ञात हैं। २७४ ग्रंथकारों के रचे हुए ४०८ ग्रंथ खोज में बिलकुल नवीन हैं।

सामान्यतया यह रिपोर्ट डाक्टर हीरालाल जी के ही द्वारा लिखी जाती किंतु दुर्दैव ने उन्हें बीच ही में उठा लिया। परिशिष्ट १ को उन्होंने यत्र-तत्र सरसरी दृष्टि से देखा था किंतु उसे भी वे अच्छी तरह नहीं देख पाए थे। रिपोर्ट का काम उन्हीं के समय में, समय से बहुत पिछड़ गया था।

सन् १९२६–२८ ई० की त्रैवार्षिक रिपोर्ट उन्होंने ता० १-१०-३१ को लिखकर समाप्त की थी। ता० ६-८-३४ को जब निरीक्षण का कार्य मुझे सौंपा गया तब १९२९–३१ ई० की रिपोर्ट अभी लिखी जाने को थी। सन् १९२६-२८ ई० की बृहत्काय रिपोर्ट गवर्मेंट प्रेस से लौट आई थी क्योंकि तब तक सन् १९२३-२५ की रिपोर्ट को गवर्मेंट प्रेस छाप नहीं सका था। इस रिपोर्ट को भी यथासाध्य छोटा करना आवश्यक समझा गया। इधर मेरे कार्यकाल का भी काम जमा होता गया। इसी से यह रिपोर्ट इतनी देरी में पूरी हो रही है। परंतु यह प्रकाशित भी हो सकेगी या नहीं, यह बात संदिग्ध है। इन रिपोर्टों को गवर्मेंट प्रेस छापता है। सन् १९२३-२५ ई० की रिपोर्ट का छपना सन् १९३० में आरंभ हो गया था और सन् १९३३ ई० में उसकी छपाई का काम समाप्तप्राय था; किंतु अब तक वह प्रेस ही में है। यह अवस्था बड़ी खेदजनक है। आशा है, गवर्मेंट इधर ध्यान देगी और रिपोर्टों को छापने की अच्छी व्यवस्था करने की कृपा करेगी।

इधर 'नागरीप्रचारिणी सभा' की प्रबंध समिति ने निश्चय किया कि रिपोर्ट का प्रधान अंश 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका' में भी प्रकाशित हुआ करे। इससे काम और भी बढ़ गया; क्योंकि खोज की रिपोर्टें अँगरेजी में छपती हैं और पत्रिका के लिये उनको हिंदी रूप देना आवश्यक है। परंतु इससे एक लाभ अवश्य है। इस रूप में उनका कुछ अंश तो प्रकाश में आ जायगा। गवर्मेंट प्रेस से तो वे न जाने कब निकलें।

केवल हिंदी जाननेवालों को भी इससे लाभ होगा।

इनमें ६३ ऐसे नवीन ग्रंथ सम्मिलित हैं जिनके रचयिता तो ज्ञात थे किंतु उनके इन ग्रंथों का पता नहीं था।

नीचे दी हुई सारिणी द्वारा ग्रंथों और उनके रचयिताओं का शताब्दि-क्रम दिखाया जाता है—

शताब्दि	१४वीं	१५वीं	१६वीं	१७वीं	१८वीं	१९वीं	अज्ञात एवं संदिग्ध	योग
ग्रंथकार	.	४	३१	७६	८२	१७२	१३४	४९९
ग्रंथ	..	१६	१५३	२०२	२४८	४०८	४४३	१४७०

ग्रंथों का विषयानुसार विभाग नीचे दिया जाता है।

१—साधारण काव्य और संग्रह	९३
२—प्रेम और श्रृंगार	१०४
३—संगीतशास्त्र और गीत-काव्य	३५
४—कथा कहानी	१४२
५—नाटक	४
६—रीति और पिंगल	२५
७—भक्ति और स्तोत्र	९६
८—पौराणिक	२२९
९—धार्मिक तथा सांप्रदायिक	२६४
१०—नीति	५
११—उपदेश	५४
१२—ज्योतिष और रमल	८९
१३—जंत्र मंत्र और स्वरोदय	३०
१४—वैद्यक	१४०
१५—कोक	१५
१६—विविध	१४५

अन्य भाषा के जिन ग्रथों के नोटिस लिए गए और जो रिपोर्ट मे सम्मिलित नहीं हैं उनकी तालिका यहाँ दी जाती है—

क्र० सं०	रचयिता	ग्रंथ	विषय	रचना-काल	लिपि-काल	गद्य या पद्य	भाषा
१	चितामणि	दोषावली	ज्योतिष	×	१८५१	गद्य	
२	नरोत्तमदास	वैष्णव वदना	स्तुति	१८६४	१८६४	पद्य	बँगला
३	,,	,, ,,	,,	,,	,,	,,	,,
४	,	स्मरण मगल	गौड़ीय संप्रदाय के वैष्णवों का मगलगान	१८५४	१८५४	,,	,,
५	स्छल	उदीच्यप्रकाश	उदीच्य ब्राह्मणों के गोत्रादि का वर्णन	..	...	गद्य	गुजराती

इस खोज में निम्नलिखित १४ मुसलमान ग्रंथकारों की कृतियाँ भी उपलब्ध हुई हैं, जिनकी सूची नीचे दी जाती है। इनमें से तारकांकित ग्रथकार और ग्रंथ, खोज में नवीन मिले हैं।

क्र० स०	ग्रथकार	ग्रंथ	रचना-काल	लिपि-काल
१	अब्दुल मजीद	क्लेशभजनी	×	×
२	आलम	माधवानल-कामकदला	×	१७६४ ई०
३	असगरहुसेन	यूनानीसार	१८७५ ई०	१८८७ "
४	भुल्लन शेख	महाराज भरतपुर और लाट साहब का मिलाप	१८७६ ,,	×
५	फरासीसी हकीम	१—इजुल पुरान	×	१८४० ,,
		२—वैद्यक फरामीसी*	×	१७६० ,,
६	हैदर	कासिदनामा	×	१८४३ ,,
७	करमअली*	निज उपाय*	१७९० ,,	×
८	मल्लिक मोहम्मद जायसी	पद्मावत	१५४० ,,	१८०१ ,,
९	नजीर	१—कन्हैयाजन्म*	×	×
		२—वशी	×	×
		३—बजारानामा*	×	×
		४—हसनामा	×	१८५३ ,,
१०	कुदरतुल्ला*	१—रागमाला	×	१८८० ,,
		२—खेल बंगाला*	×	१८५२ ,,
११	ताहिर	गुणसार कथा	१६२१ ,,	×
१२	मीरमाधो*	सुदामाचरित्र*	×	१७७५ ,,
१३	वहाव	बारहमासा	×	१८५१ ,,
१४	वजहनशाह	अलिफनामा	×	×

इसी प्रकार नीचे लिखे हुए १० जैन ग्रथकारों की रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। उनमें से भी तारकांकित ग्रथकारों और ग्रथों का पता पहले ही पहल चला है।

क्र० स०	ग्रथकार	ग्रंथ	रचनाकाल	लिपिकाल
१	भागचद*	श्रावकाचार*	१८५५ ई०	×
२	भूधरदास	१—भूधरविलास*	×	१८७७ ई०
		२—चर्चासमाधान*	×	१८४७ ,,
		३—पार्श्वपुराण*	१७३२ ,,	×
३	बुधजनदास	देवानुरागशतक	×	१८४० ,,
४	गोकुल गोलापूरब*	सुकुमालचरित्र*	१८१४ ,,	१८६१ ,,
५	झुनकलाल*	नेमीनाथ के छुद*	१७८६ ,,	१८५६ ,,
६	मुनींद्र*	रविव्रतकथा*	१६८६ ,,	१७६८ ,,
७	परमलदेव (आगरा)	श्रीपालचरित्र	१५६४ ,,	×
८	रग्घू कवि*	दशलाक्षणिक धर्मपूजा*	×	×
९	सदासुख कासिलीवाल*	रत्नकाड श्रावकाचार की भाषामय वचनिका*	१८६३ ,,	१६०१ ,,
१०	सुरति सिद्धि*	जैनबारहखड़ी*	×	×

इस त्रिवर्षी में कुछ नवीन लेखकों का पता लगा है, कुछ ज्ञात लेखकों के नए ग्रंथ मिले हैं और कुछ के समय और स्थान के विषय में नवीन प्रकाश पड़ा है, जिनका यहाँ उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है।

नवीन लेखकों में से जवाहरदास, रतिभान, रामप्रसाद (निरंजनी), रूपराम सनाढ्य और हरीराम मुख्य हैं।

जवाहरदास के "महापद" नामक एक सुंदर ग्रंथ का पता चला है। यह ग्रंथ अब तक अज्ञात ही था। ग्रंथकार फीरोजाबाद (आगरा) के निवासी और किन्हीं बाबा रामरत्न के शिष्य थे और जाति के शूद्र थे।

"हरिदास के जे दास हैं तिनको **जवाहिरदास**।
बासी फिरोजाबाद को लघुवरन **सूद्र** उदास ॥"

शायद "उदास" शब्द इस बात का द्योतक हो कि जवाहरदास विरक्त हो गए थे। उनका निवासस्थान किसी विरहवन टोले पर था। वहीं बैठकर ग्रंथकार ने अपने ही हाथ से मिति ज्येष्ठ वदी ७ मंगलवार संवत् १८८६ वि० (१८३२ ई०) को ग्रंथ लिखकर समाप्त किया था। फीरोजाबाद में 'टोला' नामक एक मोहल्ला अब तक है। ग्रंथ का रचनाकाल—

"अट्ठासिया दस अष्ट संमत पुनीत।
पूस मास अरु तिथि अमावस वास (र?) चंद्र विनीत ॥
निज जीव के समझायबे कों कियो पूरन गिरंथ।
आसक्ति जाकी छोड़ि कैं यह चलै हरि के पंथ ॥"

मिति पौष कृष्ण ३० चंद्रवासरे संवत् १८८८ वि० (१८३१ ई०) कहा गया है। यह बड़े विनीत भाव के साधु थे। इन्होंने अपने आपको बिना पढ़ा लिखा, पापी, अति पतित, अधम, कुटिल और कामी कहा है। केवल पतितपावन के नाते हरि से तरने की आशा की है। वे इतना सुंदर ग्रंथ लिखकर भी अपने में उपदेश की शक्ति नहीं समझते थे। अतएव उन्होंने ग्रंथ-निर्माण का उद्देश एकमात्र अपने जीव को समझाना ही लिखा है।

"निज जीव के समझायबे को कियो पूरन ग्रंथ ।।"

फिर यदि चाहें तो *अन्य जीव भी समझ लें*—

"सो कहत निजु जीव सों सब जीव यामें समझियौ" ।।

यद्यपि वह अपने को काव्य, कोष तथा व्याकरण के ज्ञान से रहित, अपठित कहते हैं, तथापि उनकी प्रौढ़ विषय-प्रतिपादन-शैली, भाव-गांभीर्य, सरल शब्दयोजना आदि गुणों को देखते हुए यह बात केवल उनके विनीत भाव को ही प्रदर्शित करती है।

रतिभान और उनका 'जैमिनिपुराण' भी खोज में बिलकुल नवीन हैं। 'विनोद' मे भी इनका उल्लेख नहीं है। यह ग्रंथ संवत् १६८८ वि० (१६३१ ई०) में बना था, जैसा कि नीचे के दोहे से प्रकट है—

"संवत सोरह सौ अट्ठासी अति पवित्र वैसाष ।।
सुक्का सोम त्रयोदसी भई पूरन कथाऽभिलाष ।।"

कवि ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

"देस **नौरठौ** उत्तम ठाँऊँ । बस्यो जहाँ **इटौरा** गाँऊँ ।।
कालपक्षेत्र **कालपी** पासा । सिद्धिसाध पंडित सुषबासा ।।
कलि गंगा बैतवै इत बहै । न्हाए जहाँ पाप नहीं रहै ।।
मध्य सुदेस इटौरा गाँऊँ । तहाँ **सत्य गुरु रोपन** तिहि नाऊँ ।।
प्रगट प्रनाम पंथ है जाकौ । निर्गुन मंत्र जपै जग ताकौ ।।
कीरति विदित कहै सबु कोई । हमरे कहे बड़े नहिं होई ।।
मै आय बड़ाई काज बषानौ । जाते नाउ हमारौ जानौं ।।
तासु पुत्र कुल मंडन दास । भगति भागवत प्रेम हुलास ।।
जानराय जगनाम कहायो । छोटे बड़े सबनि मन भायो ।।
ऐसो प्रगट जगत जसु जाको । **श्रीपरशुराम** पुत्र है ताको ।।

× × × ×

श्रीपरशुराम गुरु पिता हमारे । वाकी स्तुति करत पुकारे ।।
ताके भए पुत्र पुनि चारि । ....
जेठे तीनि सबहि विधि लायक । संत साधु सबहि सुषदायक ।।

× × × ×

अपनी बात कहौं परवान। सब कोउ कहै नाम रतिभान ॥"

इससे प्रकट होता है कि ग्रंथकार (कलियुग की गंगा) बेतवा नदी के किनारे पर बसे इटौरा गाँव का निवासी, प्रणाम पंथानुयायी किसी परशुराम का शिष्य था। इटौरा गाँव कालपी से चार-पाँच कोस पर है। वहाँ रोपन गुरु का मंदिर प्रसिद्ध है। प्रतिवर्ष कार्तिकी पूर्णिमा से १५ दिन तक वहाँ मेला लगता है। यह स्थान 'निवट्टा' मंडल में है। बेतवा नदी के उस पार राठ तहसील है। इटौरा भी राठ का ही एक अंग माना जाता है। संभवतः 'निवट्टा' ही रतिभान का 'नौरठा' है और दोनों एक ही शब्द 'नवराष्ट्र' के अपभ्रंश रूप हैं, जो इस मंडल का प्राचीन नाम जान पड़ता है। प्रणाम पंथ, जिसे अब लोग परनाम पंथ कहते हैं, कबीर पंथ की तरह, निर्गुण सिद्धांत को ही माननेवाला जान पड़ता है, जैसा कवि के लिखे—'प्रगट प्रनाम पंथु है जाकौ। निर्गुण मंत्र जपै जगु ताकौ ॥" इस पद्यांश से प्रकट होता है।

इस पंथ के आदि-संस्थापक गुरु रोपन थे। रोपन गुरु का मंदिर कालपी में अब तक विद्यमान है। अब भी वहाँ के महत प्रणाम पंथ की दीक्षा देते हैं। पंथ में जाति का भेदभाव विशेष नहीं है। सूत्र की कंठी दी जाती है। अधिकतर वैश्य ही शिष्य हैं।

रतिभान इन्हीं गुरु रोपन की शिष्यपरंपरा में हुए हैं और इटौरा में उनकी गद्दी के अधिकारी थे। रोपन गुरु के मंदिर में एक श्लोक का पता लगा है जिसमें रतिभान का उल्लेख है।

ऊपर के उद्धरण में रतिभान ने अपनी गुरु-परंपरा यह बताई है—

सतगुरु रोपन
|
जानराय
|
परशुराम
|
रतिभान (ग्रंथकार)

"साधु पुत्र कुल मंडनदास" में कुल मंडनदास जानराय के विशेषण के रूप में आया हुआ जान पड़ता है, पृथक् नाम नहीं। यदि यह नाम हो तो एक पीढ़ी और बढ़ जायगी।

रामप्रसाद "निरंजनी" अब तक अज्ञात लेखक ही नहीं, उनका यह महत्त्व भी है कि वे खड़ी बोली के काफी पुराने गद्य-लेखक हैं। उनके रचे योगवासिष्ठ (पूर्वार्द्ध) की चार प्रतियों के विवरण इस खोज रिपोर्ट में आए हैं। ग्रंथ का रचना-काल संवत् १७९८ वि० (१७४१ ई०) और लिपि-काल पहली प्रति का संवत् १८८० वि० (१८२३ ई०); दूसरी का १८७५ वि० (१८१८ ई०); तीसरी का १८५६ वि० (१५९९ ई०) और चौथी का संवत् १९१२ वि० (१८५५ ई०) है। रचयिता पटियाले के रहनेवाले थे। खोज एजेंट का कहना है कि वह तत्कालीन महारानी पटियाला को कथा बाँचकर सुनाया करते थे। एजेंट के अनुसार यह बात उनकी जीवनी में लिखी है। किंतु विवरण से विदित नहीं होता कि उन्हें यह जीवनी कहाँ देखने को मिली। यह पृथक् ग्रंथरूप में उन्होंने देखी अथवा इसी ग्रंथ का कोई अंश है? इसी प्रकार रचना-काल के विषय में एजेंट ने एक विवरण लिखा है—"तीसरे प्रकरण के अंत में इस प्रकार लिखा है कि साधु रामप्रसाद ने पटियाला में संवत् १७९८ वि० कार्तिक पौर्णिमा को ग्रंथ संपूर्ण किया।" इससे जान पड़ता है कि उनका लिखा यह उद्धरण उक्त ग्रंथ से ही उद्धृत किया गया है। दो अन्य विवरणों में भी यह संकेत किया गया है कि तृतीय प्रकरण उत्पत्ति के अंत में रचनाकाल सं० १७९८ दिया है। और शेष एक विवरण में इस संबंध में लिखा है—"निर्माणकाल १७९८ वि० इनके जीवनचरित्र में लिखा है। जब तीन प्रतियों में निर्माणकाल का संवत् एक ही दिया हुआ है और ग्रंथकार की जीवनी भी इसी बात को पुष्ट करती है तो ग्रंथ का निर्माणकाल यही मानने में कोई आपत्ति नहीं जान पड़ती। अब तक गद्य के जो चार आचार्य सर्वप्रथम गद्य-लेखक माने गए हैं उनमें सबसे पुराने दिल्लीनिवासी मुंशी सदासुखलाल "नियाज" हैं। उनका जन्म-संवत् १८०३ वि० माना गया है।

प्रस्तुत शोध में मिला यह ग्रंथ उक्त मुंशीजी के जन्मकाल से पाँच वर्ष पूर्व की रचना है। इससे यह ज्ञात होता है कि गद्य का जो प्रारंभकाल अब तक कल्पित किया जाता है उससे बहुत पूर्व ही हिंदी गद्य विकसित होकर अपना परिमार्जित रूप ग्रहण कर चुका था। नीचे रामप्रसादजी के गद्य के नमूने उद्धृत किए जाते हैं।

"प्रथम परब्रह्म परमात्मा को नमस्कार है जिससे सब भासते हैं और जिसमें सब लीन और स्थित होते हैं जिससे ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय द्रष्टा दर्शन और कर्त्ता कारण और क्रिया सिद्धि होते हैं जिस आनंद के समुद्र के कण से संपूर्ण विश्व आनंदमयी है जिस आनंद से सब जीव जीते हैं॥ अगस्तजी के शिष्य सुतीक्षण के मन में एक संदेह पैदा हुआ तब वह उसके दूर करने के कारण अगस्त मुनि के आश्रम को जा विधि सहित प्रणाम करके बैठे और विनती कर प्रश्न किया कि हे भगवन आप सब तत्त्वों और सब शास्त्रों के जाननेहारे हो मेरे एक संदेह को दूर करो॥ मोक्ष का कारण कर्म है कि ज्ञान है अथवा दोनों हैं समझाय के कहो इतना सुन अगस्त मुनि बोले कि हे ब्रह्मण्य कि केवल कर्म से मोक्ष नहीं होता और न केवल ज्ञान से मोक्ष होता है मोक्ष दोनों से प्राप्त होता है॥ कर्म से अंतःकरण शुद्ध होता है मोक्ष नहीं होती और अंतःकरण की शुद्धि बिना केवल ज्ञान से मुक्ति नहीं होती इस कारण दोनों से मुक्ति प्राप्त होती है कर्म से प्रथम अंतःकरण शुद्ध होता है फिर ज्ञान उपजता है ज्ञान के उपजने के बाद मोक्षसिद्धि है जैसे दोनों पंखों से पक्षी उड़कर आकाश में पहुँच जाता है इसी प्रकार कर्म और ज्ञान दोनों प्राप्त होने पर मोक्ष सिद्धि है।"

'हे रामजी जो पुरुष अभिमानी नहीं है और जिसके रूप में स्थिति है वह शरीर के इष्ट अनिष्ट में रागद्वेष नहीं करता क्योंकि उसकी शुद्ध वासना है और वह जो कर्ता है सो बंधन का कारण नहीं होता जैसे भुना बीज नहीं जमता तैसे ही ज्ञानवान की वासना जन्म मरण का कारण नहीं होती और जिसकी वृत्ति संसार के पदार्थों में स्थिति है और राग द्वेष से ग्रहण त्याग करता है ऐसी मलीन वासना जन्मों का

कारण है ऐसी वासना को छोड़कर जब तुम स्थित होगे तब तुम कर्ता हुए भी निर्लेप रहोगे ॥ और हर्ष शोक आदि विकारों से जब तुम अलग रहोगे तब वीतराग भय क्रोध से रहित होगे हे रामजी जिसका मन असंग हुआ है वह जीवनमुक्त हुआ है इससे तुम भी वीतराग होकर आत्मतत्त्व में स्थित हो जीवनमुक्त पुरुष इंद्रियों के ग्राम को निग्रह करके स्थित होता है और मान मद वैर को त्याग करके संतापरहित स्थित होता है ॥ वह सब आत्मा जानकर कर्म करता है परंतु•व्यौहार बुद्धि से रहित असंग होकर कर्म करता है वह कर्ता भी अकरता है उसको आपदा व संपदा प्राप्त हो अपने स्वभाव को नहीं त्यागता जैसे क्षीर-समुद्र मंदराचल पहाड़ को पाकर मुक्ता को नहीं त्यागता तैसे ही जीवन-मुक्त अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता हे रामजी आदर प्राप्त हो अथवा चक्रवर्ती राज्य मिले सर्प अथवा इंद्र का शरीर प्राप्त हो इन सब में समभाव स्थित होता है हर्ष शोक को नहीं प्राप्त होता वह सब आरंभों को त्यागकर नानात्व भाव से रहित स्थित होता है विचार करके जिसने आत्मतत्त्व पाया है वह जैसे स्थित हो तैसे ही तुम भी स्थित हो इसी दृष्टि को पाकर आत्मतत्त्व को देखो तब विगत-ज्वर होगे और आत्मपद को पाकर फिर जन्म मरण के बंधन में न आवोगे ॥"

उपर्युक्त नमूनों के देखने से पता चलता है कि उनका गद्य व्यवस्थित, परिमार्जित और सुंदर है। इंशाअल्ला के गद्य की भाँति उसमें फारसीपन नहीं है। "समझाय के कहौ," "जाननेहारे हौ," "तैसे ही," "वह जो करता है सो बंधन का कारण नहीं होता" आदि पुराने प्रयोगों से उनकी भाषा मुंशी सदासुखजी की भाषा से समता रखती है। उन्हीं की भाँति शुद्ध तत्सम संस्कृत शब्दों का इन्होंने भी स्थल स्थल पर प्रयोग किया है। इनकी रचना में "बाद" आदि कुछ ही विदेशी शब्द मिलते हैं जो घुल-मिलकर हिंदी की निजी संपत्ति हो गए हैं। इस गद्य का महत्त्व यह है कि यह मुंशी सदासुखलाल के गद्य से कम से कम आधी शताब्दी पहले का तो अवश्य है। मुंशीजी के

"भागवत" के अनुवाद का तो समय नहीं ज्ञात है किंतु उनके बनाए "मुंतखबुत्तवारीख" का रचनाकाल सं० १८७५ वि० विदित है। और रामप्रसाद 'निरंजनी' का "योगवासिष्ठ" भाषा इससे सत्तर वर्ष पहले का है। इंशाअल्ला की "रानी केतकी की कहानी" और लल्लूजीलाल के "प्रेमसागर" (लगभग १८६० वि०) से वह लगभग ६२ वर्ष पहले का है।

रूपराम सनाढ्य और उनका ग्रंथ "कवित्तसंग्रह" खोज में पहले पहल प्रकाश में आ रहे हैं। यह आगरा जिले की तहसील बाह में कचौराघाट के निवासी थे, जहाँ जमुना आगरे से इटावा के जिले को अलग करती है। ग्रंथ में रचनाकाल तथा लिपिकाल नहीं हैं; परंतु अनुसंधान से पता चलता है कि उनको हुए ५०–६० वर्ष से अधिक नहीं हुए। कहते हैं कि उन्हें साहित्य और संगीत दोनों का पर्याप्त ज्ञान था। वे अच्छे वक्ता तथा कथावाचक थे। उनकी कविता के कुछ नमूने यहाँ दिए जाते हैं—

"लोने लोने लोचन ललित ललाई लसै,
    लालन की पीक लोक लेखि सुख सरसै।
गोलमोल लोलन अमोलन पै अलबेली,
    अलक अवलि वैसी........ ...परसै॥
अति कमनीय कंठ किंकनी वलित कटि,
    कसैं अटपट पीतपट नीको दरसै।
'**रूपराम**' सुकवि बिलोको रामचंद्रजू के,
    मुख अरविंद पै अनंद वृंद बरसै॥"
"चकित सी चितवति चहूँदिसि चित्तचोरि,
    आई पूजि गौरि ओढ़ि ओढ़नी धनक की।
दमकति दामिनि है कीधौं चंद चाँदनी है,
    करिवरगामिनी है कली है कनक की॥
भये हैं अधीर धीर काहू न धरी है धोर,
    कहौ कैसे वीर वाकी सुषमा वनक की।

'रूपराम' काम की है कामिनी ललाम छाम,
रामजू की वाम कीधौं नन्दिनी जनक की ॥"
"पंचबान बान में न देवन बिमान में न,
भासै आसमान में न प्रानन प्रयान में।
गंग के प्रवाह में न सिंध से अगाह में न,
पच्छिन के नाह में न पौन अप्रमान में ॥
एरापति में न अस्वपति में न मेघन में,
तारापति में न तैसो कहीं कहा जहान में।
'रूपराम' सुकवि विलोक्यो ऐसो काहू में न,
जैसो बे प्रमान वेग देख्यो हनूमान में ॥"

'हरीराम' का "मृगयाविहार" नामक ग्रंथ इस खोज में प्राप्त हुआ है। पिछली रिपोर्टों एवं मिश्रबंधुविनोद में कई हरीरामों के नाम आए हैं, उन सबसे यह 'हरीराम' भिन्न हैं। इस ग्रंथ में महेंद्रसिंहजी महाराज-भदावर की मृगया का वर्णन है। ग्रंथ संवत् १९१५ वि० तदनुसार १८५८ ई० का बना और उसी सन का लिखा हुआ है। ग्रंथकार का कथन है—

"सुनि सुनि जस रसदान प्रति जोजन प्रगट पचीस।
चलि अहते हरिराम जू आए जहाँ नृप ईस ॥
नवगाये में नवल नृप श्रीमहेन्द्र हरि नाम।
दरसि परम आनँद भयो मदनरूप अभिराम ॥"

नवगाये (नौगवाँ) आगरा जिला की वाह तहसील में अवस्थित है और भदावर राज्य की वर्तमान राजधानी है। उस समय वहाँ महेंद्रसिंह गद्दी पर थे। उनके दान की कवि ने काफी प्रशंसा की है—

"दोहा सुनि कै एक, वहै पुरानो हो रच्यौ।
चही तासु की टेक, बलि बोई कीरतिलता ॥
जाके कवि पंडित गुणी विमुख न एकौ जात।
बालापन ते हरिकथा सुनत प्रफुल्लित गात ॥"

ग्रंथ का रचनाकाल इस प्रकार है—

"पांडुपुत्र[५] प्रति चंद्रमा[१] भूमिखंड[९] पुनि एक[१] ।
संवत् में मृगया रची **हरीराम** करि टेक ॥"

अर्थात् ग्रंथ संवत् १९१५ वि० (१८५८ ई०) में बना। ग्रंथकार ने केवल संवत् का ही उल्लेख किया है तिथि, मास, पक्ष और बार का नहीं किया।

ज्ञात लेखकों में से कबीर, चरणदास, छत्रकवि, देवदत्त (देव), नजीर (अकबराबादी), नंददास, पद्माकर, रामचरण, रैदास और वाजिद आदि के कुछ नए ग्रंथ प्रकाश में आए हैं। उनमें से जो महत्त्वपूर्ण हैं उनका उल्लेख यहाँ किया जाता है।

कबीर के रचे कहे जानेवाले १६ ग्रन्थों की २२ प्रतियाँ इस शोध में प्राप्त हुई हैं। इनमें सात ग्रंथ ऐसे हैं जिनके विवरण पिछली रिपोर्टों में नहीं लिए गए हैं, और न विनोदकारों ने ही उनका उल्लेख किया। 'झूलना' का उनकी दी हुई कबीर के ग्रंथों की सूची में उल्लेख तो है, परंतु उसका नाम किसी भी पूर्व रिपोर्ट में नहीं मिलता। सन् १९२९-३१ ई० की खोज में इनके जिन ग्रंथों के विवरण लिए गए हैं, उनकी सूची नीचे दी जाती है।

क्र०सं० नाम ग्रंथ	लिपि-काल	विषय
१—अखरावत	१८१७ ई०	गुरुमाहात्म्य, शब्दमाहात्म्य, नाममाहात्म्य, तथा ज्ञान का वर्णन।
२—क-कबीर बीजक	१८२८ ,,	ब्रह्मविद्या, माया, एवं जीव विषयक भजन।
ख-बीजक रमैनी	१८५० ,,	साखी आदि द्वारा ईश्वर, माया, एवं ब्रह्म का वर्णन।
३—दत्तात्रय गोष्ठी	×	दत्तात्रेय के जप, त तथा साधनादि क्रियाओं का खंडन।
४—ज्ञानस्थित ग्रंथ पहला	१८७० ,,	नाममाहात्म्य, तत्त्वनिरूपण, अजपाजाप तथा मंत्र।
दूसरा	१८१३ ,,	

क्र०सं० नाम ग्रंथ	लिपि-काल	विषय
५—झूलना	×	कंठी-माला छाप-तिलकादि का खंडन और निज मत मंडन।
६—कबीर गोरख गोष्ठी	×	कबीर-गोरख का आध्यात्मिक विषय पर वाद-विवाद।
७—कबीरजी के पद और साखियाँ	१६५३ई०	मायादि की निस्सारता और ब्रह्मज्ञान-संबंधी पद।
८—कबीरजी के वचन	×	ईश्वर की सत्ता, भक्ति तथा आत्मोपदेश।
९—कबीर-सुरतियोग	×	कृष्ण तथा युधिष्ठिर के संवाद के मिस भक्त का यथार्थ रूप प्रकाशन।
१०—कुरम्हावली	×	सृष्टि की उत्पत्ति, कूर्मावतार और उसका विस्तार तथा प्रलयादि के साथ उद्धार का वर्णन।
११—रमैनी	×	कबीर मत-संबंधी उपदेश।
१२—रेखता	×	कबीरपंथ संबंधी उपदेश।
१३—साधु-माहात्म्य	×	साधु-माहात्म्य, पारखी, गुरुसिफारिश, गुरु-माहात्म्य आदि १३ अंगों का वर्णन।
१४—सुरति-शब्द-संवाद	×	भेष बनाने का खंडन, ब्रह्मज्ञान एवं आत्मनिरूपण।
१५—स्वाँस गुंजार	×	श्वासों का वर्णन और साधु-उपदेश।
१६—वशिष्ट गोष्टी	×	जीव, माया, ब्रह्म तथा शब्दादि के संबंध में वशिष्ठ की अनभिज्ञता दिखाकर निज मत की महत्ता प्रदर्शित करना।

इनमें से संख्या ३,४,५,८,९,१३ तथा १६ के सात ग्रंथ खोज में नवीन हैं।

संख्या २ (क-बीजक, ख-बीजक रमैनी), ११ (रमैनी) और ७ (पद) को छोड़कर अन्य ग्रंथों में कुछ भी कबीर की रचना है, इसमें संदेह है। कबीर के नाम पर उनके अनुयायियों ने खूब ग्रंथों की रचना की है। दत्तात्रेय पौराणिक व्यक्ति हैं, उनका कबीर के साथ शास्त्रार्थ (दत्तात्रेय गोष्ठी) गढ़ंत ही है। वैसे ही गोरखगोष्ठी भी। क्योंकि गोरख और कबीर के समय में शताब्दियों का अंतर है। बहुधा इस शाखा के रचयिता लोग अपने समय तक के महंतों की 'दया' ग्रंथ के आदि में पुकारते हैं। संख्या ५ "झूलना" में आदि से लेकर हक नाम साहब (लगभग ई० सन् १८१९—१८४४ तक) के महंतों की दया पुकारी गई है। संख्या १० कुरम्हावली में धर्मदासी शाखा के महंत अमोलनाम सुरतसनेही साहब की (लगभग ई० सन् १७९५ से १८१९ तक) दया पुकारी गई है। संभवत: यह उन्हीं के समय की रचना होगी। ये ग्रंथ १८वीं शताब्दी से पहले के नहीं जान पड़ते। संख्या ७ 'कबीरजी के पद और साखियाँ' बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इसकी प्रतिलिपि किसी कैसोदास ने संवत् १७१० वि० असाढ़ पूनौं को की है। परंतु नोट में अन्वेषक ने लिपि-काल न जाने किस आधार पर संवत् १६९६ वि० बताया है। संभवत: ग्रंथ के किसी अंश में यह तिथि भी दी गई हो या ग्रंथ आरंभ किया गया हो संवत् १६९६ वि० में और समाप्त हुआ हो संवत् १७१० वि० में।

इसका जितना अंश विवरण-पत्र में आया है उससे पता चलता है कि वह कबीर-ग्रंथावली की पदावली और साखी से मेल खाता है। कबीर-ग्रंथावली के प्रधान आधार 'क' प्रति की सत्यता पर संदेह करने के लिये स्थान है। उसकी पुष्पिका में लिपि-काल संवत् १५६१ वि० दिया गया है। परंतु पुष्पिका की लिपि शेष ग्रंथ की लिपि से भिन्न जान पड़ती है। डाक्टर जूलसब्लॉश ने इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट किया है (बुलेटिन ऑव दी स्कूल ऑव ओरियंटल स्टडीज लंडन इंस्टीट्यूशन, भाग ५-६ पृष्ठ ७४९—'सम प्रॉब्लेम्स ऑव इंडियन फिलॉलॉजी')। मैंने स्वयं इस हस्तलेख की जाँच की जिसका परिणाम मैंने

अपने अँगरेजी ग्रंथ 'निर्गुण स्कूल ऑव हिंदी पोयट्री'(Nirguṇa school of Hindi poetry) के पृ० २७६-७७ पर दिया है। यद्यपि मुझे उसका १५६१ का लिखा होना असंभव नहीं मालूम होता, फिर भी मेरी जाँच से भी जो तथ्य प्रकाश में आए हैं वे कम संदेहोत्पादक नहीं हैं। क्योंकि पुष्पिका, जिसमें संवत् दिया गया है, गोड़ी हुई है। मैंने इस 'क' हस्तलेख को जाँच के लिये प्रयाग के डॉकुमेंट इक्सपर्ट श्री चार्ल्स ई० हार्डलेस के पास भेजा था। उनके अनुसार भी पुष्पिका और शेष ग्रंथ अलग अलग व्यक्तियों के लिखे हुए हैं। प्रस्तुत हस्तलेख कबीर-ग्रंथावली के ढंग का कबीर-ग्रंथावली के अतिरिक्त सबसे पुराना हस्तलेख है और उसका बहुत कुछ समर्थन करता है।

चरणदास के बाललीला, व्रजचरित्र, धर्मजिहाज, और योग नामक ग्रंथ नए मिले हैं। इनके विवरण पहले नहीं लिए गए थे।

बाललीला में कृष्ण के बाल-चरित्र का वर्णन है; व्रजचरित्र कृष्ण की प्रेमलीला का गान है; धर्मजिहाज में गुरु-शिष्य-संवाद के रूप मे सांसारिक दुख-सुख तथा ऊँच-नीच आदि विभिन्नताओं के कारणों का विवेचन किया गया है और जैसा नाम से प्रकट है 'योग' योग का ग्रंथ है। इस अंतिम ग्रंथ से चरणदास के एक शिष्य (नंदराम) के नाम का पता चलता है, जिसकी जिज्ञासा की पूर्ति के लिये उन्होंने इसका निर्माण किया था।

"नंदराम विनती करै सुनो ईश गुरुदेव।
तुमही दाता भगति के जोग जुगति कहि देव॥"

उनके और कई ग्रंथ गुरु-शिष्य-संवाद रूप में लिखे गए हैं, परंतु किसी में भी शिष्य का नाम नहीं आया है।

एक और बात है—गुरु-शिष्य-संवाद रूप में लिखे गए ग्रंथ कभी कभी गुरुओं के स्थान पर शिष्यों के बनाए होते हैं। परंतु इस ग्रंथ के आदि के अंश में बार बार इस बात का उल्लेख हुआ है कि इसका लेखक चरणदास ही है। जैसे—"अथ श्री सुखदेवजी का दास चरणदास कृत जोग लिख्यते"॥ "गुरु जनक को शिष्य तासु को दास

कहाऊँ।" "चरणदास को हरिभक्ति कृपा करि दीजै।" "चरणदास यह जानि के सतसंगति हरि को भजो। सुखदेव-चरण चित लाय के सो झूँठ कान दुविधा तजो।"

"षट्कर्म हठयोग" नामक एक और ग्रंथ प्रकाश में आया है जिसका नाम तो नया है किंतु संदेह होता है कि वह दूसरे नाम से उनका ग्रंथ अष्टांगयोग (दे० खो० रि० सन् १६०५ नं० १७) ही या उसका एक अंश तो नहीं है। प्रस्तुत ग्रंथ का आरंभ यों होता है—

"श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ षट् कर्म हठयोग लिख्यते"

शिष्यवचन

"दो० अष्टांगजोग वर्णन कियो मोको भई पहिचान।
छहों कर्म हठयोग के बरणौं कृपानिधान ॥"

और उल्लिखित अष्टांगयोग का इस प्रकार—

"श्रीगणेशाय नमः अथ गुरुचेले का संवाद अष्टांग योग लिख्यते।"

सिष्यवचन

"दो० व्यासपुत्र धन धन तुही धन धन यह स्थान।
मम आसा पूरी भई धन धन वह भगवान ॥"

दोनों के अंत में थोड़ा सा पाठ-भेद के साथ निम्नांकित छप्पय आया है।

छप्पय

"गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु गुरु देवन के देवा।
सर्व सिद्धि फलदेन गुरु तुमही भक्ति करेवा ॥
गुरु केवट तुम होय करि करौ भवसागर पारी।
जीव ब्रह्म करि देत हरौ तुम व्याधा सारी ॥
श्रीशुकदेव दयाल गुरु चरणदास के शीश पर।
किरपा करि अपनो किया सबही विधिसौं हाथ धर ॥"

पुरानी रिपोर्ट में इस छप्पय के अतिरिक्त और कोई उद्धरण नहीं है जिससे अधिक मिलान किया जा सके। परंतु प्रस्तुत त्रिवर्षी में भी एक अष्टांग योग का विवरण लिया गया है जिसमें यह छप्पय नहीं है।

शेष बातों में वह उपर्युक्त अष्टांगयोग से मेल खाता है। हो सकता है, इस छप्पय का अष्टांगयोग ग्रंथ से कोई संबंध न हो और किसी लिपिकार ने चरणदास के ही इस छप्पय को ग्रंथांत में लिख दिया हो। ऐसी दशा में षट् कर्म और अष्टांग योग एक ही ग्रंथ के दो रूप नहीं माने जा सकते पर एक ही ग्रंथ के अंश होने की संभावना फिर भी बनी ही रहती है।

उनके ग्रंथों से कुछ कविता के उदाहरण दिए जाते हैं।

"गोपकुमार सहंस येक लिये संगी डोलै।
ब्रज बन जमुन जल थल लीला बहु षेलै॥
कबहुँ कै होय महीनटा पटु हाथ बजावै।
कबहुँ कै बेन सुर धरै संगीत सुनावै॥"

—बाललीला

"सदाशिव ब्रज में रहे कर गोपी को रूप।
मूरति तौ परगट भई आप रहत है गूप॥
वंशीवट ढिग रहत हैं करत रहत हैं ध्यान।
वकता वेद पुरान के परम पुरातन ज्ञान॥"

—ब्रजचरित्र

"एक दुखी एक अति सुखी एक भूप एक रंक।
एकन को विद्या बड़ी एक पढ़ै नहीं अंक॥
एकन को मेवा मिले एकन चने भी नाहिं।
कारण कौन दिखाइये करि चरणन की छाँहि॥
यही मोहि समझाइये मन का धोका जाइ।
ह्वै करि निसंदेह मैं चरण रहौं लपटाइ॥"

—धर्मजिहाज

छत्र कवि का "सुधासार" ग्रंथ इस खोज में नवीन मिला है। 'विनोद' में भी इसका उल्लेख नहीं है। इसमें उन्होंने भागवत दशम स्कंध का अनुवाद किया है। इसकी रचना इनके सुप्रसिद्ध और प्रकाशित ग्रंथ "विजयमुक्तावली" से १६ वर्ष पश्चात् सन् १७१६ ई० में हुई है।

"संवतु सत्रह से बरष, और छिहत्तरि तत्र।
चैत्रमास मित अष्टमी, ग्रंथ कियो कवि छत्र॥"

इस दोहे में ग्रंथ का रचनाकाल मि० चैत्रशुक्ला अष्टमी सं० १७७६ वि० (१७१९ ई०) है। वार दोहे में नहीं दिया गया है। विजय-मुक्तावली की भाँति इसमें भी छत्रकवि ने अपना और अपने आश्रयदाता का संक्षिप्त परिचय दिया है—

"श्रीवास्तव कायथ कुल, छत्रसिंह इहि नाम।
गाइ विप्र के दास नित, पुर अटेर सुखधाम॥"
"सोहति **सिंह गुपाल** की, कीर्ति दिसा विदिसानि।
भूतल थलभल अरिन के, गहतु धर्ग जब पानि॥
भूपति भानु भदोरिया, किरनि क्रांति जुग छाइ।
सुहृद सकल नृप के सुखद, तम अरि गए बिलाइ॥
ताको सुखद **अटेर पुर**, मुलुक भदावर माँहि।
चारि वर्ण युत धर्म तहँ, रहत भूप की छाँह॥"

उपर्युक्त अवतरण प्रकट करते हैं कि वह तत्कालीन भदावर-नरेश "गोपालसिंहजी के आश्रित थे, किंतु इससे १९ वर्ष पहले रचे जानेवाले "विजयमुक्तावली" ग्रंथ में इन्होंने भदावरनरेश 'कल्याणसिंह" को अपना आश्रयदाता बतलाया है। यहाँ इस ग्रंथ की वर्तमान शोध में मिली हुई प्रति से कुछ अवतरण देते हैं जिनमें भदावर की स्थिति का भी कुछ वर्णन है—

मथुरामंडल में बसै, देस **भदावर** ग्राम।
कगलतत (?) प्रसिद्ध महि, छेत्र **बटेश्वर** नाम॥
सुजस सुवास सुनिकट ही, पुरी अटेर हि नाम।
जग्य जाप होमादि वृत, रचत धाम प्रति धाम॥
नगर आदि अमरावती, वासी विबुध समान।
आखंडल सौ लसत तहँ, भूपतिसिंह कल्यान॥"

इसी भदावर-राज्यांतर्गत **अटेर नगर** था। यह नगर अब रियासत ग्वालियर में है। विस्तृत भदावर राज्य अत्यंत संकुचित

रह गया है और अब महाराज भदावर के पास रियासत का अंशमात्र है। अटेर भिंड से हटकर उनकी राजधानी आगरा जिले की बाह तहसील के नौगवाँ नामक गाँव में आ गई है। विवरण के पृष्ठ ४६ में तथा खोज रिपोर्ट सन् १९०६-८ संख्या २३ और खो० रि० स० १९०९-११ ई० सं० ४८ पर कल्याणसिंह संभवत: विजय-मुक्तावली के उपर्युक्त आधार पर ही **अमरावती** के राजा कहे गए हैं जो स्पष्ट अशुद्ध है। नगर का नाम "अटेर" तो इससे ऊपरवाले दोहे में ही दिया गया है जिस पर अमरावती का आरोप किया गया है।

देव के अन्य ग्रंथों के अतिरिक्त, नायिका-भेद-संबंधी; "शृंगार-विलासिनी" नाम का उनका एक और ग्रंथ प्राप्त हुआ है। यह संस्कृत में लिखा गया है। ग्रंथांत में उनका निवासस्थान इष्टिकापुरी (इटावा) दिया है। यथा—

दोहा

"देवदत्त कवि **रिष्टिका**, पुरवासी स चकार।
ग्रंथ मिमं वंशीधर **द्विजकुल** धुरं बभार॥

इससे आगे के छप्पय मे ग्रंथ निर्माण-काल इस प्रकार दिया है—

"स्वर७ भूत५ स्वर७ भूमि१ मिते वत्सरे यदाऽयं।
दिल्लीपति **नरंगसाहि** रजयत्सदुपायं॥
दक्षिण दिशि च तदेव **कुंकुण** नाम विदेशे।
कृष्णावेणीनाम नदी संगम प्रदेशे॥
श्रावणे बहुल नवमी तिथौ रेवानो रेवती धृतियुते।
कवि देवदत्त उदिते रवावगमपय दहनिस्तुते॥"

इससे प्रकट है कि उक्त ग्रंथ देव ने भारत के दक्षिण कोंकण देश में, जिसे वह विदेश कहते हैं और जो कृष्णावेणी नामक नदी-संगम पर स्थित है, संवत् १७५७ वि० (१७०० ई०) के श्रावण की बहुला नवमी को सूर्योदय के समय पूर्ण किया था। वार और पक्ष स्पष्ट ज्ञात नहीं होते। उस

दिन रेवती नक्षत्र और धृति योग था। ना० प्र० सभा में नायिका-भेद-संबंधी देवकृत एक संस्कृत ग्रंथ रखा बताया जाता है (दे० मिश्र बं० वि०, द्वि० सं० पृ० ५१९)। उसका रचना-काल संवत् १७५१ वि० (१६९४ ई०) कहा गया है। किंतु प्रस्तुत ग्रंथ का रचना-काल संवत् १७५७ वि० (१७०० ई०) है। इसकी विशेषता यह है कि संस्कृत में होने पर भी यह ग्रंथ छप्पय, सवैया और दोहा आदि छंदों में लिखा गया है जो हिंदी के खास अपने छंद हैं। हिंदी पिंगल के नियमों के अनुसार उनमें तुक भी मिलाई गई है। इन्हीं विशेषताओं के कारण इस ग्रंथ का विवरण रिपोर्ट में सम्मिलित किया गया है। सामान्यतया संस्कृत ग्रंथों के विवरण स्वीकार नहीं किए जाते। विवरण-पत्र में दो सवैये, एक दोहा और एक छप्पय आया है।

ग्रंथकार उस समय दिल्ली की गद्दी पर मुगल सम्राट औरंगजेब का आधिपत्य बतलाता है। औरंगजेब की मृत्यु ग्रंथरचना-काल के सात वर्ष पश्चात् सन् १७०७ ई० में हुई थी। पिछली रिपोर्टों और मिश्रबंधु-विनोद में देवरचित ग्रंथों की नामावली मे इस ग्रंथ का नाम नहीं आया है। खेद है कि यह ग्रंथ खंडित अवस्था में मिला है, और लिखा भी अस्पष्ट अक्षरों मे है। *

इसमें से कुछ कविताओं के नमूने दिए जाते हैं।

सवैया

"वरवर्णिनि रूपमिदं कथयामि कथं तव सर्व शुचेः सचनं।
रसरासविलास रसा स विहास विचित्रचरित्ररुचेरचनं ॥"
' मदनज्वर आलि विलोकयतस्तु तथापि करोति मनः पचनं।
यदपांदुमुखच्युतमिंदुमुखि शृणु ते ससुधामधुरं वचनं ॥"

॥ इति प्रौढा ॥

---

* यह ग्रंथ अब एन० एल० शर्मा ऐंड को० भरतपुर (स्टेट) द्वारा प्रकाशित हो गया है।—पी० द० ब०।

अथ मुग्धा

सवैया

"वदतीति नवोढवधू दयिते गुणार्यावनशीलयुते ।
भयमत्र मतं न विधेहि रतं वितनोमि मनोभिमतं तनुते ॥
वहुवाद वृता भयकोपभृता च सकंटक कंप तनु तनुते ।
विमुखं परिरंभसुखं पुनरेव मनागपि रंतुमनामनुते ॥"

नजीर की कविता खड़ी बोली में बड़ी लालित्यपूर्ण है । इस खोज में उनके रचे हुए चार छोटे छोटे ग्रंथ 'कन्हैया-जन्म", "वंशी", "बंजारा-नामा" तथा "हंसनामा" मिले हैं । पहले तीन हमारी खोज में नवीन हैं । रचनाकाल किसी में नहीं दिया है । अंतिम ग्रंथ का लिपिकाल संवत् १९१० वि० (१८५३ ई०) है । उनका हंसनामा खोज रिपोर्ट सन् १९२६-२८ ई० के नं० ३३३ पर (रिपोर्ट अप्रकाशित है) नोटिस में आ चुका है । डा० ग्रियर्सन ने अपने माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आफ हिंदुस्तान में इनका रचनाकाल सन् १६०० ई० से पूर्व माना है । कविताकौमुदी के भाग ४ मे पं० रामनरेश त्रिपाठी इनका जन्म १७४० ई० में और मरण १८२० ई० के लगभग लिखते हैं । आगरे के बाबू रामप्रसाद गर्ग ने "रूहेनजीर" के नाम से इनकी कविताओं का एक संग्रह भी प्रकाशित किया है । उनका बंजारानामा वर्नाक्युलर स्कूलों की लोअर प्राइमरी कक्षा एक में पढ़ाया जाता था, जो मौलवी मोहम्मद इस्माइल द्वारा संपादित "उर्दू" की दूसरी किताब में संगृहीत है । इसमें संदेह नहीं कि कविता सरस एवं प्रसाद-गुण-संयुक्त है । यही एक मुसलमान कवि है जिसने दिल खोलकर हिंदुओं के देवी-देवताओं और मेलों तथा त्यौहारों पर सहृदयतापूर्वक कविता की है । इसका कारण यह है कि उनका संपर्क मुसलमानों की अपेक्षा हिंदुओं से अधिक रहा । वह आगरे में पेशवा के लड़कों को पढ़ाते थे और वहीं माईथान मुहल्ले में सेठों और महाजनों के लड़कों को भी पढ़ाने जाया करते थे । उपर्युक्त पुरानी रिपोर्ट में हंसनामा का रचनाकाल संवत्

१-६१८ वि० (१८६१ ई०) दिया गया है। जान पड़ता है कि उसमें लिपिकाल के स्थान पर रचना-काल लिखा गया है।

नजीर के कुछ पद्यांश उद्धृत किए जाते हैं जिससे यह बात ज्ञात होगी कि हिंदू-अवतारों पर उनकी कितनी श्रद्धा है।

"यों नेक नछत्तर बनते हैं इस दुनिया में संसार जनम।
पर उनके और ही लच्छन हैं जब लेते हैं औतार जनम॥
सुभ साइत से यों दुनिया में 'औतार' गर्भ में आते हैं।
जो नारदमुनि हैं ध्यान भली सब इसका भेद बताते हैं॥
वह नेक महूरत में जिस दम इस सृष्टि मे जन्मे जाते हैं।
जो लीला रचनी होती है वह रूप यह जाद कहाते हैं॥
यों देखने में और कहने में वह रूप तो बाले होते हैं।
पर बाले हो पन में उनके उपकार निराले होते हैं॥"
"जी बहलाते मन परचाते और खूब खिलौना मँगवाते।
हर आन झुलाते पलने में इधर और उधर टहलाते॥
कर याद नजीर अब हर साइत उस पालने और उस झूले की।
आनंद से बैठी चैन करौ जै बोलो कान्ह झन्डोले की॥"

—कृष्णजन्म

"जब मुरलीधर ने मुरली अपनी अधर धरी।
क्या क्या प्रेमगीत की इसमें धुन भरी॥
लै इसमें राधे राधे की हरदम भरी खरी।
लहराई धुन जो उसकी इधर द्वारे उधर जरी॥
सब सुननेवाले कह उठे जै जै हरी हरी।
ऐसी बजाई कृष्ण कन्हैया ने बाँसुरी॥"

× × × ×

"मोहन की बाँसुरी के मैं क्या क्या कहूँ जतन।
लै इसकी मन की मोहनी धुन उसकी चित हरन॥
इस बाँसुरी का आने का जिस जा हुआ वचन।
क्या चल पवन "नजीर" पखेरू वा क्या हिरन॥

सब सुननेवाले कह उठे जै जै हरी हरी।
ऐसी बजाई कृष्ण कन्हैया ने बाँसुरी॥"—बाँसुरी

नंददास-रचित ८ ग्रंथों की १४ प्रतियाँ प्रस्तुत खोज में मिली हैं। इनमें से "फूल मंजरी" तथा "रानी माँगौ" नवीन हैं। उनके नाम मिश्रबंधुओं की दी हुई इनके रचित ग्रंथों की सूची में भी नहीं आए हैं। पहले ग्रंथ में केवल ३१ दोहे हैं। उनमें नई दुलहिन के रूप-सौंदर्य के वर्णन के साथ साथ प्रत्येक दोहे में एक फूल का नाम आया है। जैसे—

सीस मुकुट कुंडल झलक सँग सोहै ब्रजबाल।
पहरै माल **गुलाब** की आवत है नँदलाल॥ १॥
चंपक बरन सरीर सब नैन चपल है मीन।
नव दुलहनि कौ रूप लखि लाल भए आधीन॥ २॥

"रानीमाँगौ" भी छोटा सा ही ग्रंथ है। इसके आदि में—"मैं जुवती जाँचन ब्रत लीन्हौं" की प्रतिज्ञा से ग्रंथ का उठान हुआ है और दान माँगने के रूप में कृष्ण-राधिका के प्रेम का वर्णन किया गया है। कूबरी को ध्यान में रखते हुए कवि ने राधिका के द्वारा कृष्ण पर बड़े मनोहर उपालंभ कराए हैं। दोनों ग्रंथों के रचना-काल और लिपिकाल अज्ञात हैं।

पद्माकर—इस खोज में 'जगद्विनोद' और 'गंगालहरी' के अतिरिक्त एक नवीन, किंतु छोटी सी केवल ८ सवैयों की "लिलहारी लीला" नामक रचना और प्रकाश में आई है जो पद्माकर की बताई गई है। इसके पूर्व की रिपोर्टों में इसका उल्लेख नहीं है। 'विनोद' में भी इस ग्रंथ का नाम नहीं आया है। इसका कथानक यह है—श्रीकृष्ण लिलहारी का भेष बनाकर राधा के यहाँ पहुँचकर, "कोई लीला गुदवा लो" की आवाज लगाते हैं। राधा अपनी सखी द्वारा लिलहारी को बुलवाती है। लिलहारी के भीतर पहुँचने पर राधा नख से शिख तक सारे अंग में कृष्ण के अनेक नाम गोद देने की उससे प्रार्थना करती है। लिलहारी उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर पारिश्रमिक ठहराती है। राधा ऐसा इच्छित कार्य कर देने के बदले मूल्यवान् आभूषण दुलरी तिलरी आदि देना स्वीकार करती है। लिलहारी इस पर सहमत होकर राधा का

हाथ अपने हाथ में लेती है किंतु उसी समय राधा श्रीकृष्ण के छद्म वेश को पहचान लेती है—

"हाथ पै हाथ धरयौ जबही तब चौंकि उठी वृषभानु-दुलारी।
श्याम सिखे छल छंद बड़े तुम काहे को भेष बनावत नारी॥"

बात खुल जाती है। और राधिका—"हम हैं हरि की पग धोवन-हारी।" कहकर लीला समाप्त कर देती है। इस ग्रंथ में रचनाकाल नहीं है। उसकी प्रतिलिपि चैत्र बदी अष्टमी संवत् १६१४ वि० (१८५७ ई०) में किन्हीं बालदीन पांडे ने की है। रचना रोचक होने के साथ साथ छोटी है इसलिये वह अविकल रूप से यहाँ उद्धृत की जाती है।

कवित्त

(१)

"मनमोहनी रूप धरो ..बरसाने चली बनि कै लिलहारी।
वृषभान के द्वारे अवाज दई तुम लीला गुदावो सबै ब्रजनारी।
राधे अवाज सुनीं श्रीकृष्ण की लीनी बुलाय पिन्हावन हारी (?)।
लै आवो बुलाय हमारे घरै एक आई है आजु नई लिलहारी॥

(२)

उन्ह जाय जवाब दियो श्रीकृष्ण को तुम्हैं बोलावत राधिका प्यारी।
अपने कर सों कर साथ लियो जहँ बैठी हुती वृषभानदुलारी॥
सिर पै जो डला सो उतारि धरो अरु जाय खड़ी प्रिय पास अगारी।
तबही हँसि राधे जवाब दियो तुमहीं लिलहारी की गोदनहारी॥

(३)

लिखि दे भुजदंड पै बालगोविंद भुजै भगवान गरे गिरधारी।
ठोढ़ी पै मूरति ठाकुर की अरु ओठन पै लिखु कृष्ण मुरारी॥
नासिका पै नाम नरायन को अरु भौंहन पर लिखु कृष्ण मुरारी।
हुइ के अधीन सबै लिखिदे सुनिये लिलहारी की गोदनहारी॥

(४)

दे लिखि बाँहन में ब्रजचंद सो गोल कपोलन कुंज बिहारी।
सो (?) पदुमा लिखिहौ विधि लिखु गोसे गोविंद गरे गिरधारी॥

याही तरह नख सें सिख लौं लिखु नाम अनंत इकंत होइ प्यारी।
स्यामर के रँग सों गोदि दे अंग में सुनिए लिलहारी की गोदनहारी॥

(५)

दंत पै नाम दमोदर को मेरे कंठ में लिखि दे कृष्ण मुरारी।
दाहिनी ओर लिखो सजनी कर चारि भुजा के बाँके मुरारी॥
हाथ पै नाम लिखो हरि को दोनों जोबन बीच लिखो बनबारी।
हृदय बीच नाम लिखौ मनमोहन सुनिए लिलहारी की गोदनहारी॥

(६)

काम हमारो यही सजनी हम हैं परदेसी सहित रुजगारी।
तुम जोई कहौ हम सोई लिखैं तेरे अंगहि अंग में वेधों मुरारी॥
वृषभान लली बरसाने घरा बड़े राजन की तुम राजदुलारी।
देहौ कहा सो कहौ सजनी हम हैं लिलहारी की गोदनहारी॥

(७)

देहौं मैं हार हजारन कौ दुलरी तिलरी हँसुली बड़ि भारी।
देहौं छला दोनों हाथन के अरु[१] पैंधन को अपने तन सारी॥
और अभूषन तोहि दिहौं अरु[१] पैंधन की अपने तन सारी।
मोतिन माल अमोल दिहौं सुनिए लिलहारी की गोदनहारी॥

(८)

हाथ पै हाथ धरौ जबहीं तब चौंकि उठी वृषभान-दुलारी।
श्याम सिखे छल छंद बड़े तुम काहेक भेष बनावत नारी॥
देखन को तोहि प्रेम बढ़ो तबही हम रूप कियो लिलहारी।
पदमाकर यों वृषभान (कुमारि) कहै हम हैं हरि की पग धोवनहारी॥"

यह रचना पद्माकर की है या नहीं, निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। इसकी भाषा उतनी मँजी हुई नहीं जितनी पद्माकर की अन्य रचनाओं की है। पद्य ढीले ढाले हैं। केवल अंतिम सवैये के अंतिम चरण में पद्माकर का नाम आया है। वह भी छंद में बाहर

---

१ एक ही पंक्ति दोनों स्थानों पर नकल हुई है।
प्रस्तुत ग्रंथ अशुद्ध नकल हुआ जान पड़ता है।

से जोड़ा हुआ ज्ञात पड़ता है। यदि यह पद्माकर की ही रचना है, तो संभवतः आरंभिक रचना होगी।

रामचरण रामसनेही पंथ के संस्थापक और नवलराम महाजन मेहरी के गुरु थे, जिसका नवलसागर नाम का ग्रंथ १९०१ ई० की खोज रिपोर्ट के नं० ६४ पर नोटिस में आ चुका है। नवलदास ने स्वयं कहा है—

"अनंतकोटि जन सिरन पै, रामचरण उर माँहि।
आन भरोसो आन बल, नवलराम के नाँहि॥"

प्रस्तुत रिपोर्ट में इनके रचे ९ ग्रंथों के विवरण लिए गए हैं—१—जिज्ञासबोध (नि० का० १८४७ वि०) २—विश्रामबोध (नि० का० १८५१ वि०) ३—समतानिवासग्रंथ (नि० का० १८५२ वि०) ४—विश्वासबोध ग्रंथ (नि० का० १८४९ वि०) ५—अमृत उपदेश (नि० का० १८४४ वि०) ६—रामचरण के शब्द ७—अणभै विलास (नि०का०१८४५ वि०) ८—रामरसायनि और ९ सुखविलास (नि० का० १८४६ वि०)। इनमें से अब तक कोई भी ग्रंथ खोज में नहीं मिला था। हाँ, 'विनोद' के नं० १०७५ पर इनके रचे ५ ग्रंथों का उल्लेख मात्र हुआ है, जो इस रिपोर्ट की सं० १, २, ४, ६ तथा ७ पर आए हैं। प्राप्त ग्रंथों के नं० ६ का नाम 'रामचरण के शब्द' है और 'विनोद' की सूची में एक ग्रंथ का नाम "वाणी" लिखा है। सामान्यतया 'वाणी' किसी संत की समस्त रचनाओं के संग्रह को और "शब्द" उसके एक अंश अर्थात् पदावली के संग्रह को कहते हैं। ऐसी अवस्था मे 'शब्द' एक स्वतंत्र ग्रंथ न होकर "वाणी" का अंग भी हो सकता है। परंतु किसी निश्चय पर पहुँचने के लिये यहाँ पर्याप्त उपकरण प्रस्तुत नहीं है। विनोद में इनके एक और ग्रंथ "रसमालिका" का भी उल्लेख है; परंतु खोज मे यह ग्रंथ अयोध्या के महंत रामचरण की रचनाओं में सम्मिलित किया गया है जो ठीक भी ज्ञात पड़ता है (दे० खो० रि० १९०३ नं० ४४)। ग्रंथ नं० ६ तथा ८ के अतिरिक्त शेष सभी ग्रंथों में रचनाकाल दिए गए हैं, जो उनके नामों के साथ कोष्ठकों में लिखे हैं।

इनके सभी ग्रंथों में आरंभ का स्तुति-संबंधी दोहा एक ही है जो यहाँ दिया जाता है—

"रामतीव (राम) गुरु देवजी (पुनि) तिहूँकाल के संत।
जिनकूँ रामचरण की वंदन बार अनंत॥"

यह राजपूताने के शाहपुरा नामक स्थान के निवासी थे। इनके गुरु का नाम कृपाराम या कृपालराम था, जैसा उन्होंने अपने अमृत उपदेश नामक ग्रंथ में बताया है—

"सिर ऊपर सतगुरु तपै **कृपारामजी** संत।
रामचरण ता सरणि में ऐसो पायो संत॥"

इसी प्रकार "शब्द" में लिखा है—

"सतगुरु संत कृपालजी रामचरण सिष तासु के।
कारिज करि कारण मिले तुम गुरु रामजन दास के॥"

कहीं कहीं इन ग्रंथों के एक ही व्यक्ति के रचे होने के विषय में कुछ संदेह हो जाता है। 'रामरसायनि' में लिखा है—

"सवद एक **महराज** का नग मोताहल जोइ।
ग्रंथ जोड़कर **रामजन** षानाजाद जु होइ॥" ॥ १ ॥
ए वाहक उधार करिणकूं रामचरण जी भाषै।
राम रसाइनि रस का भरिया आप सबन कूँ दाषै॥ २ ॥
ताकी जोड़ ग्रंथ या परगट राम जन बणवायो।
ज्ञान भगति वैराग जुगति मुकती पंथ बतायो॥ ३ ॥

पहले में ग्रंथ का जोड़नेवाला रामजन है, दूसरे में रस का भरनेवाला 'रामरसाइनि' "ए वाहक उधार करण कूँ" रामचरणजी ने 'भाषा' है और तीसरे दोहे में "ताकी जोड़"—उसी टक्कर का या (यह) ग्रंथ रामजन ने "बणवायो" है। किंतु ग्रंथ के अंत में—"इति श्री रामरसाइनि ग्रंथ रामचरणकृत संपूर्ण समाप्त:" ही लिखा है।

ग्रंथकार ने अपना मृत्यु-काल कैसे लिख दिया होगा? यह संदिग्ध है। अनुमान होता है कि किसी शिष्य तथा प्रतिलिपिकर्त्ता

ने पीछे से इस या इसी प्रकार की अन्य प्रतियों में इसे अपनी ओर से जोड़ दिया होगा।

'अनुभवविलास' में भी—"ग्रंथ जोड़ कही रामजन" इसी प्रकार का पद आया है। रामचरण के शिष्य उनको 'राम' कहा करते थे, जैसा इनके शिष्य नवलदास ने अपने नवल-सागर में कहा है—

"रामगुरु उर मे बसे अनंत कोटि जन सीस।
नवलौ अनुचर रावरौ मानूँ बिसवा बीस॥"

अनुभवविलास में रामचरण के गुरु कृपाराम की मृत्युतिथि—"बत्तीसै कृपाल छठि भाद्रपद सुदि सुकर। छोड़े आप सरीर परम पद पहुँचे मुकर॥" और इससे पूर्व रामचरण का जन्मकाल—"अठारै से षट वर्ष मास फागुन बदि सातैं।संत पधारै धाम सनीचर वार विख्यातैं॥" इस प्रकार दिया है।

'रामरसाइनि' के अंत में रामचरण की मृत्यु का इस प्रकार उल्लेख है—

"ये वाहक पुर माह पधारे धाम कूँ।
ररंकार में लीन उचारे राम कूँ॥
अठारह सै पचपन बुधि पाँचै षरी।
परिहा वैसाष मास गुरुवार देह त्यागन करी॥"

इनसे पता चलता है कि वि० १८०६ में रामचरण का जन्म हुआ, वि० १८३२ में उसके गुरु कृपाराम का निधन हुआ और १८५५ वि० में स्वयं रामचरण का। उनके 'शब्द' ग्रंथ में भी 'जन्म संवत्' वि० १८०६ (१७४९ ई०) दिया है।

इनकी भाषा में राजस्थानी शब्दों के अतिरिक्त फारसी, अरबी के शब्द भी बहुत आए हैं जैसे—"मुरसदकूँ सजदा करै", "आलम औरस जुलुम रहैं", "तू सिर गजब चलि आई जुरा की फौज", "गाफिल होइ मति भाई" आदि। इनकी रचना का सार गुरु-महिमागान, संसार से

विरक्तता और केवल राम से नाता रखना है। कविता साधारणतया अच्छी है। उदाहरण के लिये शब्दमहिमा एवं नाम की उत्तमता के विषय में उनका यह पद्य लीजिए—

"याको है सवाद मीठो दीठो हम चाखि एह,
फीकौ लगै काम रामजी सौं रागी है।
उत्तिम सबद सत निज जाकी सोभ भारी,
उचारी है गिरा ज्ञान अगता ज्यों त्यागी है॥
भगति भजन मन जीतिवे गति कही,
गही जो विचारवान वोही बड़भागी है।
अणभैविलास महासुख को निवास जानो,
विद्वान् जो काहा (?) एहु परम विरागी है॥"

रैदास के नाम से दो ग्रंथ "प्रह्लादलीला" और 'रैदास के पद" इस खोज में प्राप्त हुए हैं। दूसरा ग्रंथ तो निस्संदेह प्रसिद्ध रैदास का ही है। असंभव नहीं कि पहला भी उन्हीं का हो पर यह निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता। दूसरे ग्रंथ का लिपिकाल संवत् १६९६ वि० (१६३९ ई०) है। खोज रिपोर्ट सन् १९०२ ई० के नं० ९७ पर नोटिस में भी आ चुका है, किंतु यह प्रति उससे १० वर्ष पुरानी है। प्रह्लाद-लीला में निर्माणकाल तथा लिपिकाल नहीं दिया गया है। ग्रंथ छोटा ही है। इसमें नरसिंह-अवतारांतर्गत भक्त प्रह्लाद की अनन्य भक्ति का दिग्दर्शन कराया गया है। ग्रंथ की प्रतिलिपि अशुद्ध हुई जान पड़ती है। इस ग्रंथ में प्रह्लाद का जन्मस्थान मुलतान (पंजाब) बताया गया है—

"सहर बड़ो मुलतान जहाँ एक कुलवँत राजा।
यहँ जनमे प्रह्लाद सर सुर सुवि (? भुवि) के काजा॥
पूछी विप्र बुलाय कै जन्म्यौ राजकुमार।
या लच्छण तो कोई नहीं असुर संहारणहार॥"

यहाँ 'सर' शब्द संभवत: सरे के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। प्रह्लाद के जन्म लेते ही उनके लक्षण पूछे गए हैं। जोर देकर यह भी पूछा गया है कि उसका कोई लक्षण "असुर संहारणहार" तो नहीं है?

इससे आगे कथाक्रम भंग हो गया है। पूछी बात का कोई उत्तर नहीं दिया जाता, उसकी पढ़ाई लिखाई आरंभ हो जाती है। "सुण **धौरौं** प्रह्लाद कौ रणगुण तैं पढैये। मैं पढैऐ राम का नामा और जान ही जानौं॥" "राम मैं छोड़ि तीसरो अंक न आनौं॥" ज्ञात होता है, यहाँ 'धौरौं' शब्द पास के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'सुण धौरौं' पास आकर सुन। पंडित से कहा गया है, "रणगुण तैं पढ़ैए" तू इसे रण-विद्या की शिक्षा देना। पास आकर कही हुई बात को भी प्रह्लाद सुन लेता है और उत्तर देता है—

"कहा पढावै बावरै और सकल जंजार।
भौसागर जमलोक ते मुहि कौन उतारे पार॥"

इस प्रकार राम नाम को ही सार कहकर प्रह्लाद ने पढ़ा। इससे आगे भक्त की दृढ़ प्रतिज्ञा की परीक्षाओं का वर्णन समाप्त होकर, अंत में—

"अस्त भयौ तब भानु उदै रजनी जब कीन्हा।
खंभा में ते निकरि जाँघ पर जोधा लीन्हा॥
नष सौं निभ्रप बिडारिया तिलक दिया महराज।
सप्तलोक नव षंड में तीनि लोक भई राज॥"—

इस पद्य से विषय समाप्त हो जाता है। और ग्रंथकार भगवान् की वत्सलता का वर्णन करके ग्रंथ को समाप्त कर देता है—

"जहाँ भक्त को भीर तहाँ सब कारज सारे।
हमसे अधम उधारि किए नरकन से न्यारे॥
सुर नर मुनि मंडन कहैं पूरण ब्रह्म निवास।
मनसा बाचा कर्मणा गावै **जन रैदास**॥"

वाजिद का राजकीर्तन नामक ग्रंथ पहले नोटिस में आ चुका है। (दे० स० रि० १९०२ ई० संख्या ७९)। इनका रचना-काल १६०० ई० माना गया है। इस खोज मे बिना सन् संवत् के दो ग्रंथ "अरिल्ल" और "साखी" नाम से मिले हैं। दोनों ग्रंथ प्राय: संत संप्रदाय से संबंध रखते हैं। "अरिल्ल" की लिखावट अस्पष्ट और अशुद्ध है, अतएव पढ़ने में कठिनता से आती है।

इसमें विरह, सुमिरण, काल, उपदेश, कृपण, चाणक, विश्वास, साध तथा पतिव्रता इन नौ अंगों पर रचना की गई है। ग्रंथ के आरंभ में "संतसाहिब सत सुकृत कबीर" लिखा हुआ है जिससे पता चलता है कि या तो लेखक या प्रतिलिपिकर्त्ता कबीरपंथी था। परंतु अब तक परंपरा से जो कुछ ज्ञात है, उससे वाजिद या बाजिंदा दादू के चेले प्रसिद्ध हैं। अरिल्ल की रचना का एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है—

"अपनो ही सब षोट दोस कहा राम को।
हरिहा नीच ऊँच सौं बाँधौ कहौ किहि काम कौ॥"

× × × ×

दरगह बड़ी दिवान न आवै ठेहजी।
जो सिर करवत देइ तो कीजै नेहजी॥
दर ते दूरि न होइ दरद को हेरिके।
हरिहाँ जाण राइ जगदीस निवाजो फेरिके॥"

'**साखी**' बड़ा उपदेश-पूर्ण ग्रंथ है—किंतु अपूर्ण मिला है। इसमें भी सुमिरणादि विषयों के अनुक्रम से रचना की गई है। साखी के कुछ उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं—

"हाथी साथी कौन को काको गढ औ गाँव।
वाकी विरियाँ आइ है जब आड़ो हरिनाम॥"
"तिल पल पहर घरी गुन गोविंद के गाइ।
काल जाल ते निकसि है सुमिरन सेरी पाइ॥"
"भवसागर डूबे नहीं तुरत लगाए तीर।
वाजिद राम को नाम यह जग जहाज है वीर॥"
"वाजिद राम के नाम को बिसरि जाइ जिन सूर।
छाया हाथै हस्त की पाय ताय है दूर॥"
"देह गेह गुन बीसरी नेह लात के लागि।
लोहू पानी ह्वै गया जरत विरह की आगि॥"
"विधना मेरी बुधि हरी धरी सीसतर बाँहि।
नारि गँवारिन समभई भये कौन के नाह॥"

"काहे न बरसि बुझावइ मही तपति है देह।
बरखा चूक न चाहिए इक बालम इक मेह॥"
"देहु मौज दीदार की लेहु न याको अंत।
चाल को लै चहुँ दिसा निसा अँधेरी कंत॥"
"कृपा करी बाजीद सौं धरहु सीस पर पाउँ।
पलक पाट दोउ खोलिकै नैनों भीतर आउ॥"

इनके अतिरिक्त दो हस्तलिखित ग्रंथ और हैं जिनका उल्लेख करना आवश्यक है। एक तो प्रपन्नगणेशानंद का "भक्तिभावती" ग्रंथ और दूसरा "रामरक्षा" ग्रंथ।

'भक्तिभावती' पिछली एक रिपोर्ट में भी आ चुकी है (दे० खो० रि० सन् १९०१ नं० १३६)। उसमें इसका रचनाकाल नीचे लिखी हुई चौपाई के अनुसार संवत् १६११ वि० ठहरता है—

"संवत् सोले से भवसालै। मथुरापुरी केसवा आलै॥
असुन पेहल ग्यारसि रिविवारी। तह षट पहलीहि विसतारी॥"

परंतु प्रस्तुत खोज मे इसकी जो प्रति प्राप्त हुई है उसमें रचनाकाल संवत् १६०९ वि० (१५५२ ई०) और लिपिकाल संवत् १८१० वि० (१७५३ ई०) दिया हुआ है। रचनाकाल की चौपाई इस प्रकार है—

"संवत् सोलह सै नवमालै। मथुरापुरी केसव आलै॥
आश्वनि पहल ग्यारसि रविवारी। तहँ षट् पहर माहिं विसतारी॥"

कवि ने संवत् का आधा संख्या में और आधा संकेत में न लिखा होगा जैसा पुरानी रिपोर्टवाली प्रति में है। वह असंभव तो नहीं पर अस्वाभाविक सा अवश्य लगता है। पुरानी रिपोर्टवाली प्रति में संभवत: लिपिकार ने 'नव' के स्थान में गलती से 'भव' (रुद्र=ग्यारह) लिख दिया है। ग्रंथ-रचना-काल १६०९ वि० ही माना जाना चाहिए जैसा वर्तमान प्रति में है।

'रामरक्षा' इस बार के विवरण में रामानुजाचार्य के नाम से आई है। हस्तलेख के अंत में लिखा है—"इति श्री**रामानुजाचार्य**-

कृत श्रीरामरक्षा स्तोत्र संपूर्णम् ॥" इसके अतिरिक्त ग्रंथ के उद्धरणों में रामानुज का नाम कहीं नहीं है जिससे यह प्रकट हो सके कि इसके रचयिता वही हैं। रिपोर्टों में अब तक यह रामरक्षा कई बार आ चुकी है (दे० खो० रि० सन् १९०० ई० नं० ७६; खो० रि० सन् १९०९—११ ई० नं० २५० ए और दिल्ली रिपोर्ट सन् १९३१ के पृष्ठ ८)। कभी यह सुप्रसिद्ध स्वामी रामानंद की मानी गई है और कभी रामानंददास की। किंतु रामरक्षा थोड़े से हेर फेर के साथ प्रत्येक दशा में मूलतः एक ही ग्रंथ है। उसके रचयिता अलग अलग नहीं समझे जाने चाहिएँ। स्वयं रामानंद इसके रचियता हों या न हों, किंतु प्रस्तुत प्रति को छोड़कर अन्य प्रतियों में लिखनेवालों का अभिप्राय प्रसिद्ध रामानंद से ही जान पड़ता है। उनके शिष्य कबीर के नाम से भी एक रामरक्षा मिलती है (दे० खो० रि० सन् १९०६—८ नं० १७७ एस) जिससे इस बात की पुष्टि होती है। प्रस्तुत रामरक्षा भी रामानंद के नाम से मिलनेवाली रामरक्षा ही है। उसमें रामानंद का नाम तक आया है। तुलना के लिये हम सन् १९०३ ई० की रिपोर्ट-वाली तथा प्रस्तुत रामरक्षा के कुछ अंशों को नीचे उद्धृत करते हैं—

(अ) खोज रिपोर्ट सन् १९०३ ई० से—

ओं संध्या तारणी, सर्व दोष निवारणी।

संध्या करे विघ्न टरें पिंभ प्राण की रक्षा नाथ निरंजन करें॥

ज्ञान धन मन पहुचै पंचहुताशनं। क्षमा जाय समाधि पूजा नमो देव निरंजनं ॥ १ ॥

गर्जंत गवन वाजंत वेयण शंखसवद ले त्रिकुटी सारं। दास रामानंद निजु तत्त्व विचारं। निजु तत्त्व ते होते ब्रह्म-ज्ञानी। श्रीरामरक्षादीय उधरे प्राणी। राजद्वारे पथे घोरे संग्रामे शत्रुसंकटे। जायलागा धीरं। श्रीरामचंद्र उचरंते लक्ष्मणजी सुनते जानकी सुनते। हनुमान सुनते पापं न लिपंते। पुन्य ना हरंते। संध्याकाले प्रातःकाले जे नरा पठते सुनते मोक्ष मुक्तफल पावते। इति श्री रामरक्षा रामानंद की ॥

(ख) प्रस्तुत रिपोर्ट के नोटिस से—

ओं संध्या तारणी सर्व **दुःख** निवारनि।

संध्या **उचरे** विघ्न टरे। **पिंड** प्राण की रक्षा श्रीनाथ निरंजन करे ॥ १ ॥

ज्ञान **धूप** मन **पहुप** इंद्रिय पंचहुतासन। छिमाजाप समाधि पूजा नमोदेव निरंजनं ॥ २ ॥

गाजंत गगन बाजंत **वेनु संख धुनि सब्द** त्रिकुटी सारं। **गुरु** रामानंद **ब्रह्मकों चिन्हंते सो ज्ञानि** एते रामरक्षा **बादिये** उद्धरंत प्राणी। राजद्वारे पथे घोरे संग्रामे शत्रु**संकटे**। **श्रीरामरक्षास्तोत्र-मंत्र** राजारामचंद्र उचरंते लक्ष्मण**कुमार** सुनत **धर्म्मनिहारं ततो पुण्य लभ्यते**। **सीता सुनंत** हनुमान सुनंत। बीज त्रिकाल जपंते सो प्राणी परांगता ॥ इति श्रीरामानुजाचार्यकृत श्रीरामरक्षा स्तोत्र सम्पूर्ण ॥

दोनों प्रतियों के पाठभेद मोटे अक्षरों द्वारा दिखाए गए हैं। पिछली रिपोर्टवाली प्रति में जहाँ दोष, करे, पिंभ, धन, पहुपै, गर्जंत, गवन आए हैं वहाँ प्रस्तुत प्रति में क्रमशः दु:ख, उचरे, पिंड, धूप, पहुप, गाजंत, गगन आदि शब्द हैं। 'पिंभ' तो जान पड़ता है 'पिंड' ही है जिसे लिपि की प्राचीनता के कारण विवरण लेनेवाले ने गलती से ऐसा पढ़ा है। कहीं साधारण मात्रादि का ही भेद है, कहीं शब्दों का भी भेद हो गया है और कहीं-कहीं कुछ अंश घट-बढ़ भी गया है। परंतु इतना होने पर भी दोनों ग्रंथ एक दूसरे से अभिन्न ही हैं। रामानंद-संप्रदाय रामानुज के श्री संप्रदाय की एक शाखा है। इसलिये रामानंदियों में भी रामानुजाचार्य का बड़ा मान है। कभी कभी उनके ग्रंथ 'श्रीमते रामानुजाचार्याय नमः' से आरंभ होते हैं। संभवतः किसी प्रतिलिपिकर्त्ता ने इसी कारण गलती से रामानुज को ग्रंथकार समझ लिया हो।

यह रिपोर्ट का केवल पूर्वांश है। नीचे रिपोर्ट के साथ दिए गए परिशिष्टों की सूची दी जाती है। वे रिपो के आवश्यक और महत्त्व-

पूर्ण अंग हैं पर स्थानाभाव से पत्रिका में नहीं दिए जा सकते। इसी लिये पत्रिका के पाठकों के लाभार्थ ऊपर ग्रंथों से कुछ अधिक उद्धरण दे दिए गए हैं जो मूल रिपोर्ट में नहीं हैं। संपूर्ण रिपोर्ट यू० पी० गवर्मेंट प्रेस से प्रकाशित होती है।

परिशिष्टों की सूची

परिशिष्ट १ में ग्रंथकारों पर टिप्पणियाँ।

परिशिष्ट २ में ग्रंथों के विवरणों से उद्धरण।

परिशिष्ट ३ में उन ग्रंथों की सूची जिनके लेखक अज्ञात हैं।

परिशिष्ट ४ (अ) में उन लेखकों की सूची जिनके ग्रंथ सन् १८८० ई० के बाद के लिखे प्राप्त हुए हैं।

(ब) में आश्रयदाता और आश्रित ग्रंथकारों की सूची।

सिकंदर का भारत पर आक्रमण

[लेखक—श्री शालिग्राम श्रीवास्तव]

योरप की जातियों में से जिन्होंने सबसे पहले भारत में घुसकर आक्रमण करने का साहस किया था, वे यूनानी या यवनानी थे। मकदूनिया-नरेश सिकंदर उनका नेता था। पाश्चात्य-इतिहासकार इस घटना का वर्णन यह दिखलाने के लिये बड़े समारोह के साथ करते हैं कि यूनानियों की यह चढ़ाई, जो ३२६ ई० पू० में हुई थी, एशिया पर योरप की पहली विजय थी। पर ऐसा समझना बड़ी भूल है।

प्राक्कथन

इतिहास के विद्यार्थियों से छिपा न होगा कि सिकंदर से बहुत पहले जेरेक्सस और डायरेस प्रथम[1] ईरान के आर्य नरेशों ने क्रमशः ४८० और ४८६ ई० पू० में यूनान पर चढ़ाई करके एथेंस में घुसकर रक्त की नदियाँ बहा दी थीं[2]। इतना ही नहीं, योरप के सब से बड़े शक्तिशाली रोम-साम्राज्य को शापूर तथा नरसी इत्यादि ईरानी राजाओं ने परास्त करके रोम के कई सूबे छीन लिए थे।

हमारे स्कूलों में विद्यार्थियों को भारत पर सिकंदर के हमले का जो वृत्तांत पढ़ाया जाता है, वह प्रायः इतना ही रहता है कि 'सिकंदर के आने पर तक्षिला के राजा आंभी ने तुरंत उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी, जो पंजाब के राजा पोरस का शत्रु था, तथा कुछ अन्य छोटे छोटे राजाओं ने भी ऐसा ही किया था; और फिर सिकंदर और पोरस से युद्ध हुआ, जिसमें पोरस की हार हो गई। पर पोरस की

१—ईरान के अंतर्गत 'नक्श-रुस्तम' और 'तख्तेजमशेद' से प्राप्त शिला-लेखों में इस राजा का नाम داریوش (दारयूश) लिखा है। हमने हेरोडोटस के लेखानुसार ऊपर यूनानी ढंग का नाम लिखा है।

२—Herodotus, Books VI and VII.

वीरता से प्रभावित होकर सिकंदर ने उसका आदर किया और फिर अपने देश को लौट गया क्योंकि उसकी सेना थक गई थी। अतः उसने भारत में आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया था।'

स्मिथ ने यह वृत्तांत कुछ अधिक विस्तार के साथ लिखा है, पर ऐसे ढंग से जिससे भारत की हर प्रकार से हीनता और दुर्बलता ही प्रकट होती है।

खेद के साथ कहना पड़ता है कि हमारे पास इस महान् ऐतिहासिक घटना की कोई अपनी सामग्री नहीं है; क्योंकि भारतीय पंडितों ने इसका कोई वृत्तांत लेखबद्ध नहीं किया। सिकंदर की बात तो बहुत पुरानी है, महमूद गजनवी तक के हमलों का वर्णन किसी भारतीय लेखक ने नहीं लिखा। लिखते कैसे ? वे या तो ब्रह्म-चिंतन में डूबे रहते थे अथवा अन्य प्रकार की आध्यात्मिक विवेचनाओं में या काव्य तथा नाटकों की रचना में लगे रहते थे। फिर ऐसी बातों को कौन लिखता ? अतः विवश होकर हमको विदेशियों के वचन पर अवलंबन करना पड़ता है, जो कभी पक्षपात-रहित होकर नहीं लिख सकते थे। और फिर उन्हें विजेता होने का अभिमान था।

यहाँ हमको शेख सादी की एक कहानी याद आई, जिसका उल्लेख असंगत न होगा। वह इस प्रकार है कि एक मनुष्य ने रात को स्वप्न में शैतान को देखा कि उसका रूप बहुत ही सुंदर है। उसने चकित होकर शैतान से पूछा कि यार ! हम तो दुनिया में तुमको बहुत ही कुरूप सुनते आते थे। यह क्या बात है ? उसने हँसकर उत्तर दिया 'भाई, हम तो वास्तव में ऐसे ही हैं जैसा इस समय तुम देख रहे हो, पर कलम दुश्मनों के हाथ में है,[१] वे जैसा चाहते हैं हमारा चित्र खींचकर दिखा देते हैं'।

ठीक यही दशा विदेशी इतिहासकारों की है जिन्होंने हमारे विषय में जैसा चाहा लिख मारा है; और वही हमारे लिये आज प्रमाण बना हुआ है।

१—ولیکن قلم در کف دشمن است (بوستان)

उस दिन प्रोफेसर हुमायूँ कबीर ने बंगाल कौंसिल में, कलकत्ता की 'कालकोठरी' का हत्याकांड कल्पित सिद्ध करते हुए कहा था कि जातीयता और साम्राज्य-वाद के हेतु किस प्रकार से इतिहास गढ़ा जाता है[१]।

एक बात और विचारणीय है कि दो दलों के संघर्ष में केवल एक की विजय और दूसरे के पराजय से उनके बलाबल का ठीक अनुमान नहीं हो सकता। विजेता की वीरता और विजित की कायरता का भी वास्तविक परिचय नहीं मिलता जब तक गहराई में पैठकर यह न देखा जाय कि उसकी तह में उस समय कौन सी अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिस्थितियाँ काम कर रही थीं।

यों तो ऊपरी दृष्टि से देखने मे वाटरलू की लड़ाई में नेपोलियन की हार हो गई थी; योरप के महायुद्ध में जर्मन परास्त हो गए थे। पर क्या कोई निष्पक्ष इतिहासकार हृदय पर हाथ रखकर कह सकता है कि इन युद्धों में हार का कारण नेपोलियन और जर्मनों की कायरता और निर्बलता थी ?

अब यह देखना है कि सिकंदर के आक्रमण की कौन सी मूल सामग्री उपलब्ध है, जिसके आधार पर पिछले इतिहासकारों ने उसका वृत्तांत लिखा है।

सिकंदर के इतिहास का स्रोत

कहा जाता है कि सिकंदर के कतिपय साथियों और कुछ अन्य समकालीन अथवा निकटवर्ती लेखकों ने उसकी विस्तृत जीवनियाँ लिखी थीं जिनकी संख्या १६ के लगभग बतलाई जाती है, पर इनमे से अब संसार में किसी का पता नहीं है[२]। संभवत: मुद्रण-कला न होने अथवा अरबों के आक्रमण के समय सिकंदरिया के विशाल पुस्तकागार के भस्म हो जाने से ये सब पुस्तकें भी अग्नि की भेंट हो गई हों।

१—"How history is manufactured for national and imperialist purposes." (Leader Feb. 7, 1938 p 19.)

२—देखिए The Invasion of India by Alexander, Translated from Greek writings by W. J. Mcrindle p. 8.

कुछ भी हो, सिकंदर के सैकड़ों वर्ष पीछे चार मुख्य इतिहास-कारों ने सिकंदर का इतिहास लिखा है, जिनका कहना है कि उन्होंने सिकंदर के समय की या उसके कुछ पीछे की लिखी हुई, उन उन्नीस पुस्तकों में से, जिनकी चर्चा ऊपर आई है, कुछ को देखकर अपने इतिहास की रचना की है।

इन पिछले इतिहासकारों की सूची इस प्रकार है :—

नाम	जीवन-काल
(१) डियोडोरस ((Diodoros)	अनुमान से पहली शताब्दी ई०
(२) कुइंट करटियस (Quint Curtius)	४१—५१ ई०
(३) प्लूटार्क (Plutarch)	५०—१२५ ,,
(४) अर्रियान[१] (Arrian)	१३०–१८० ,,

पाश्चात्य इतिहासकारों ने इनमें एक और जस्टिन (Justin) को भी जोड़ लिया है। पर हमारी राय में वह इस योग्य नहीं है। कारण यह है कि पहले तो वह इन सबसे कई शताब्दी पीछे का मालूम होता है और इसलिये उसको उस प्राचीन सामग्री के देखने का अवसर नहीं मिला था, जिसको उक्त चारों ने अपनी पुस्तकों का आधार बतलाया है। दूसरे, इसकी रचना बहुत ही संक्षिप्त है और उसमें कुछ ऐसी बातों का समावेश है जिसकी पुष्टि और कहीं से नहीं होती। इसके विषय में एक प्रसिद्ध इतिहासज्ञ प्रोफेसर फ्रीमैन ने ठीक ही लिखा है कि जस्टिन एक शिथिल और प्रमादी लेखक था[२]।

अतः हमने इस निबंध के लिये उसकी रचना को अप्रामाणिक समझकर छोड़ दिया है। शेष चारों इतिहासकारों के विषय में उक्त प्रोफेसर की राय है कि "इनमें केवल अर्रियान एक विचारशील समालोचक था और प्राचीन इतिहासकारों के वर्णन पर,

१—इसका उच्चारण हिंदी-लेखक प्रायः 'एरियन' करते हैं, पर हमने फ्रेंच अनुवाद में देखकर 'अर्रियान' लिखा है।

२—Historical Essays by Prof. Freeman, 2nd series, third edition p. 183, 184.

जो उसे मिले थे, बुद्धिपूर्वक विवेचना करने की योग्यता रखता था। डियोडोरस पूर्णतया विश्वासपात्र था, पर साथ ही वह पक्का मूढ़ ('Impenetrably stupid') था। प्लूटार्क ने, जैसा कि वह कहता है, कोई इतिहास नहीं लिखा, बल्कि उसने (यूनान और रोम के कुछ प्रसिद्ध पुरुषों की तुलनात्मक) जीवनियाँ लिखी हैं, जिनमें उसका उद्देश्य राजनीतिक और सैनिक घटनाओं की अपेक्षा अधिकांश कहानियों के रूप में चरित्रों का चित्रण था। करटियस एक कल्पित कहानी लेखक से कुछ अच्छा था और वही इन सब में ऐसा था जिसके विषय में हम यह संदेह नहीं करते कि उसने जान-बूझकर सत्य की हत्या की हो[1]।"

इन सब की सचाई और ईमानदारी का नमूना यथास्थान हम आगे दिखलाएँगे।

उपर्युक्त चारों इतिहासकारों में सं० २ रोमन था, जिसने अपनी पुस्तक लैटिन में लिखी है। शेष तीनों यूनानी थे, इसलिये उनकी पुस्तकें उन्हीं की भाषा में हैं। पर यह याद रखना चाहिए कि इनमें से केवल सं० ३ की पूरी पुस्तक इस समय मौजूद है। शेष तीनों की पुस्तकों के कुछ अंश ही मिलते हैं अथवा उनके कुछ अवतरण अन्य पुस्तकों में पाए जाते हैं। फिर जो कुछ भी है उनमें कुछ घटनाओं के वर्णन में एक दूसरे से बहुत कुछ मतभेद पाया जाता है।

यह है परोक्ष-सूचना पर अवलंबित सामग्री, जिसकी जड़ का पता नहीं है। इसी के आधार पर आधुनिक लेखक सिकंदर का इतिहास लिखकर हमारे सामने उपस्थित करते हैं। और फिर यह कि इन ऊपर के चारों इतिहासकारों में से किसी ने भारत में आकर कुछ जाँच-पड़ताल करने का कष्ट नहीं उठाया। घर बैठे बैठे उलटी-सीधी पुस्तकें लिख डालीं। इसके अतिरिक्त इनकी पुस्तकें कहीं कहीं विचित्र और निर्मूल कथा-कहानियों से भी सनी हुई हैं। स्वयं अर्रियान ने इसको अपनी पुस्तक ५, अध्याय ४ में स्वीकार किया है।

१—Abid

इन लोगों ने कहाँ तक ईमानदारी से अपना इतिहास लिखा है, यह इसी से अनुमान कर लेना चाहिए कि इन्होंने भारतीयों को प्राय: असभ्य, जंगली और बर्बर भी लिखा है।

अस्तु, हम इन्हीं की पुस्तकों के आधार पर, जिनका मेक्रिंडल ने अविकल अनुवाद किया है, भारत पर सिकंदर के आक्रमण का आलोचनात्मक वृत्तांत लिखते हैं।

सिकंदर ने अपने देश से दल-बादल सेना लेकर निकटवर्ती देशों को हस्तगत करते हुए ईरान को ओर से छोर तक विजय कर लिया था।

विषय-प्रवेश

इसमें उसको अधिक कठिनाई नहीं हुई थी। इससे उसका हौसला बहुत बढ़ा हुआ था।

इधर पंजाब और सिंध प्रदेश की उस समय राजनीतिक स्थिति यह थी कि वे छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त थे। फिर उनमें आपस मे संगठन न था, बल्कि उलटा एक दूसरे से लड़ते-भिड़ते रहते थे।

देश-द्रोहियों में प्राय: कन्नौज के जयचंद्र का नाम लिया जाता है, पर यदि इतिहास के पन्ने उलटे जायँ तो दुर्भाग्य से भारत में अनेक

सिकंदर और आंभी

जयचंद्र मिलेंगे, जिनमें से ऐतिहासिक युग में तक्षशिला का राजा आंभी शायद सबसे पहला था। उससे और अभिसार-नरेश से तथा पंजाब के राजा पुरु से घोर शत्रुता थी[१]। इनमें पुरु अधिक बलवान् था।

आंभी ने इन राजाओं का दमन करने के लिये सिकंदर को भारत पर आक्रमण करने के लिये निमंत्रित किया था। इतना ही नहीं, उसने सिकंदर को इस काम के लिये जन-बल से पूरी सहायता भी दी थी।

इसका वृत्तांत अरियान ने तो अपनी चौथी पुस्तक के बारहवें अध्याय में इतना ही लिखा है कि सिकंदर ने निकैया (Nikaia) में पहुँचकर आंभी और उस ओर के कुछ अन्य भारतीय सरदारों के पास एक दूत द्वारा कहला भेजा कि वे लोग उसको सिंधु नदी के किनारे उस स्थान पर मिलें जहाँ उसका पहुँचना सुगम हो। तदनु-

१—करटियस, पु० ८ अ० १२।

सार आंभी इत्यादि सिकंदर से मिले और उसके लिये ऐसी भेंट लाए जो भारत में बहुत ही आदरणीय थीं तथा उन्होंने २५ हाथी भी दिए थे।

करटियस (पु० ८ अ० १२) इस प्रकार लिखता है कि (भारत की सीमा के) इस ओर का राजा आंभी था। उसने अपने पिता से आग्रह किया था कि वह अपना राज्य सिकंदर को सौंप दे। उसके मरने पर आंभी ने दूत भेजकर सिकंदर से पूछा कि वह उसके आने तक राज्य करे अथवा उससे पृथक् हो जाय? इस पर सिकंदर ने उसको राज्य करने की आज्ञा दे दी। उसने सिकंदर के सिपाहियों के लिये अन्न भेजा। उसके पश्चात् सिकंदर से और उससे भेंट हुई और उसने ५६ हाथी, बहुत से भेड़ और ३ हजार उत्तम वंश के बैल सिकंदर को दिए।

डियोडोरस (पु० १७ अ० ८६) लिखता है कि सिकंदर जब सोगदियाना (Sogdiana) में था तो आंभी ने उसको कहला भेजा था कि वह उसकी ओर से न केवल उन भारतीयों से युद्ध करेगा जो उसके विरुद्ध शस्त्र उठायेंगे, बल्कि वह अपना राज्य भी उसके भेंट करता है।

प्लूटार्क ने (अ० ५९) लच्छेदार कहानी के साथ इसका वर्णन यों किया है कि जब सिकंदर से आंभी की भेंट हुई तब आंभी ने उससे कहा कि यदि तुम हमारा अन्न-जल छीनने के लिये नहीं आए, जिसके लिये लोग प्रायः लड़ा-भिड़ा करते हैं, तो हम-तुम एक दूसरे से क्यों लड़ें? यदि तुम धन के लिये आए हो और यह समझते हो कि मैं तुमसे अधिक धनी हूँ तो जो कुछ मेरे पास है वह हाजिर है; और यदि तुम मुझसे अधिक धनाढ्य हो तो तुमसे माँगने मे मुझे लज्जा न होगी। यह सुनकर सिकंदर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने कहा कि मैं तुमसे दान दक्षिणा में पीछे न हटूँगा। फिर उसको बहुत कुछ दिया। आंभी ने जो कुछ सिकंदर को भेंट किया था वह उसने, और मिलाकर, लौटा दिया।

इन चारों इतिहासकारों के वर्णन में जो अंतर है वह पाठक स्वयं देख सकते हैं। इनमें से केवल करटियस ने यह लिखा है कि

आंभी ने सिकंदर को ३ हजार बैल भी भेंट किए थे। स्मिथ ने इसको लेकर अपनी ओर से इतना और नमक-मिर्च लगाया है कि आंभी ने ये बैल सिकंदर की सेना को मांस खाने के लिये दिए थे, जैसा कि वैदिक काल के ऋषि अपने अतिथियों का सत्कार किया करते थे[१]।

यह है आजकल के विदेशी इतिहास-लेखकों की ईमानदारी का नमूना, जो हमारे बच्चों के पढ़ने के लिये इतिहास लिखते हैं। स्मिथ की यह कल्पना सर्वथा मिथ्या है, जिसका कोई आधार नहीं है, क्योंकि करटियस के वर्णन में मांस खाने को बैल देने का कोई उल्लेख नहीं है।

पहले तो सिवा एक करटियस के और किसी इतिहासकार ने बैलों के देने की चर्चा नहीं की, दूसरे यदि यह सत्य भी मान लिया जाय तो बैल उस समय लड़ाई के सामान ढोने तथा रथों के खींचने के काम में आते थे।

इन इतिहासकारों के वर्णन का सार इतना ही है कि आंभी ने अपने शत्रुओं के दबाने के लिये सिकंदर को बुलाया था और रसद-पानी तथा सेना से उसको पूरी सहायता दी थी।

यह थी उस समय की परिस्थिति और वातावरण, जिससे सिकंदर ने लाभ उठाकर—अपने बल-बूते से नहीं, बल्कि भारतीय सेना की सहायता से—पुरु इत्यादि से युद्ध किया था।

ऊपर बतलाया गया है कि आंभी के अतिरिक्त कुछ छोटे छोटे अन्य राजाओं ने भी सिकंदर का साथ दिया था, जैसे शशिगुप्त (Sisikottas)[२] इत्यादि। परंतु प्राय: ये वेही लोग थे, जिन पर आंभी का पूरा प्रभाव था। इससे यह न समझना चाहिए कि पुरु को छोड़कर पंजाब तथा सिंध के सभी राजाओं ने सिकंदर के दल-बल से भयभीत होकर चुपचाप उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। बल्कि

१—The Oxford History of India by Vincent A. Smith, P. 59, 60.

२—अरियान (४-३०)

अनेक छोटे सरदारों ने, अल्पशक्ति होते हुए भी, पग पग पर जी तोड़कर सिकंदर से लोहा लिया था, जैसा कि अस्पसियान, मसग, केनियन, वजीर और मालवियों के युद्ध से पाया जाता है, जो इस बात का द्योतक है कि यहाँ के लोगों में उस समय आत्म-सम्मान तथा स्वतंत्रता की रक्षा के लिये कितनी प्रबल उत्कंठा थी।

हम इनमें से कुछ लड़ाइयों का वर्णन संक्षेप में करते हैं, क्योंकि सामान्य इतिहासों में इनकी चर्चा बिलकुल छोड़ दी गई है।

अस्पसियान[1] से युद्ध

ये लोग एक दुर्गम पहाड़ी किले में थे। सिकंदर ने एक बड़ी सेना लेकर इन पर धावा किया। कई दिनों तक किला फतह नहीं हुआ। वे लोग बड़ी वीरता से लड़ते रहे, जिसमें सिकंदर और उसके कई सरदार घायल हुए। अंत में अपने नेता के मारे जाने के कारण वे किला छोड़कर चले गए।

इस युद्ध का वर्णन सिवा अर्रियान (पु० ४ अ० २३) के और किसी ने नहीं किया।

मसग[2] का युद्ध

अर्रियान ने इस लड़ाई का वर्णन (पु० ४, अ० २५-२६-२७) इस प्रकार किया है कि मसगवाले पहले दिन ऐसी वीरता से लड़े थे कि सिकंदर को विवश होकर पीछे हटना पड़ा था। उसके बाद तीन दिन तक घोर युद्ध हुआ, जिसमें दोनों ओर के बहुत से योधा हताहत हुए। अंत में उन्होंने अपने राजा के मारे जाने के कारण सिकंदर से संधि के लिये बातचीत की, जिसको सिकंदर ने इस शर्त पर स्वीकार किया कि उनकी कुल सेना उस (सिकंदर) के साथ मिलकर काम करे। इस पर उन्होंने नगर खाली कर दिया और एक पहाड़ी पर जाकर ठहरे। किंतु सिकंदर को मालूम हुआ कि वे अपने देशवालों के विरुद्ध शस्त्र न उठाएँगे। अतः वह अँधेरी रात में अपनी कुल सेना लेकर उन पर

१—यह सरहद की एक पहाड़ी वीर-जाति थी।

२—इस स्थान का अभी ठीक पता नहीं चला। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि यह पजकोरा अथवा गौरी नदी के पूर्व की ओर था।

सहसा टूट पड़ा और उनको टुकड़े-टुकड़े कर डाला। फिर नगर में घुसकर, जिसका कोई रक्षक न था, राजा की माता और उसकी लड़कियों को कैद कर लिया।

प्लूटार्क ने (अ० ५६) सिकंदर के इस कृत्य की घोर निंदा की है[१]। अर्रियान ने लिखा है कि इस युद्ध में सिकंदर के केवल २५ आदमी नष्ट हुए थे, जो चार दिन के घोर संग्राम में सर्वथा असंभव है। इसी से प्रकट है कि उसका वर्णन पक्षपात-पूर्ण है।

प्लूटार्क ने उसी अध्याय में इसका खंडन इस प्रकार किया है कि इस युद्ध में सिकंदर को बहुत हानि उठानी पड़ी थी। अतः उसने मसगवालों के साथ संधि कर ली थी।

डियोडोरस ने (पु० १७, अ० २८४) इस घटना का वर्णन और ही तरह से किया है, जिससे विदित होता है कि उस समय भारतीय वीरांगनाएँ किस प्रकार से युद्ध-स्थल में अपने पुरुषों का हाथ बटाती थीं।

वह लिखता है 'जब दोनों ओर से शपथ द्वारा संधि के लिये समझौता हो गया तब रानी ने सिकंदर को बहुमूल्य वस्तुओं की भेंट भेजी और उसके सिपाहियों ने, जैसा कि निश्चित हुआ था, नगर से निकलकर ८० स्टेडिया (लगभग ८ मील) के अंतर पर डेरा डाला, जहाँ उनको किसी प्रकार का खटका न था। सिकंदर उन सिपाहियों से दिल में द्वेष रखता था और उन पर आक्रमण करने के लिये अपनी सेना तैयार किए हुए था। वह एकाएक दौड़कर उन पर टूट पड़ा और उसने उनमें से बहुतों का वध कर डाला। उन लोगों ने बड़े जोर से चिल्लाकर कहा कि यह विश्वासघात उस शपथ के सर्वथा विरुद्ध है, जिसे सिकंदर ने अपने देवताओं का नाम लेकर खाया था। इस पर सिकंदर ने ऊँचे स्वर से कहा कि 'तुमसे केवल नगर से सुरक्षित निकल जाने के लिए प्रतिज्ञा की गई थी, न कि यह समझकर कि तुम लोग सदैव मकदूनियों के मित्र रहोगे'।

१—"This rests as a foul blot on his (Alexander's) martial fame......"

भारतीय सैनिक उस समय बड़े संकट में पड़ गए। फिर भी उन्होंने अपनी पंक्ति गोलाकार बाँध ली और अपनी स्त्रियों तथा बालकों को बीच में कर लिया; और फिर मकदूनियों से जी तोड़कर लड़ने लगे। घोर युद्ध और भयंकर रक्तपात हुआ। दोनों ओर से तलवारें लपक लपककर रक्त चाटने लगीं। एक ओर मुट्ठी भर भारतीय सिपाही, दूसरी ओर सिकंदर की टिड्डी-दल सेना। फिर भी भारतीयों ने अपने धैर्य और वीरता का अपूर्व परिचय दिया। हाथों-हाथ की लड़ाई थी। वार करने में एक दल दूसरे से पीछे नहीं रहता था। बात की बात में लोथों के ढेर लग गए और कितने बुरी तरह घायल होकर गिर गए। जब भारतीय सैनिक अधिक मारे गए और घायल हुए तब उनकी देवियाँ, जो सशस्त्र थीं, अपने पुरुषों की ढाल होकर रक्षा करने लगीं और जिनके पास शस्त्र न था, वे बढ़-बढ़कर शत्रुओं की ढाल छीनने लगीं। अंत में अधिकांश भारतीय सैनिक अपनी स्त्रियों सहित बड़ी वीरता और आवेश के साथ युद्ध करते हुए, विपक्ष के बहुसंख्यक दल से शक्तिहीन होकर, सम्मानपूर्वक मृत्यु की गोद में चले गए; और उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि ऐसे जीवन की अपेक्षा, जो अपमान के बदले प्राप्त हो, मर जाना भला है।

करटियस ने (पु० ८ अ० १८) लिखा है कि यह युद्ध ६ दिन में समाप्त हुआ था। उसने सिकंदर के उस जघन्य हत्याकांड की चर्चा बिलकुल उड़ा दी है, जिसका वर्णन ऊपर के तीनों इतिहासकारों ने किया है।

उसने इस युद्ध का वर्णन इस प्रकार आरंभ किया है, 'उस नगर के राजा का नाम 'अस्साकेनस' था, जिसकी हाल ही में मृत्यु हो गई थी। अत: उसकी विधवा रानी 'किल्योफिस' राज्य का प्रबंध करती थी। वह ३८ हजार सेना से अपने नगर की रक्षा करती रही'। इसके बाद इस इतिहासकार ने एक विचित्र कहानी गढ़ी है कि युद्ध के अंतिम दिन सिकंदर की ओर से लकड़ी के बहुत से बुर्ज रानी के किले के सामने खड़े किए गए, जो चलायमान थे। उनको देखकर रानी के सिपाहियों ने समझा कि उनको देवता हिला रहे हैं, अत: सिकंदर से लड़ना व्यर्थ है; और फिर वे सब भाग गए। रानी विवश होकर

आत्म-समर्पण के लिये सिकंदर के पास सहेलियों सहित दौड़कर आई और अपने बच्चे को उसके घुटने पर डाल दिया। सिकंदर ने उसके पद से अधिक उसका सम्मान किया, क्योंकि उसके पीछे रानी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम सिकंदर रखा गया, यद्यपि मालूम नहीं कि उसका पिता कौन था।

पाठक देखें कि इस कहानी में करटियस ने अपना कैसा परिचय दिया है। एक ओर तो वह आरंभ ही में लिखता है कि राजा की शीघ्र ही मृत्यु हुई थी, दूसरी ओर अंत में रानी के सतीत्व पर लांछन लगाता है। क्या यह संभव न था कि रानी अपने पति के जीवन-काल से गर्भवती रही हो ?

इस युद्ध का वर्णन केवल अर्रियान ने (पु० ४, अ० २७) किया है। वह लिखता है कि सिकंदर ने समझा था कि वजीर के लोग, मसग के परास्त हो जाने का वृत्तांत सुनकर, सुगमता के साथ आत्म-समर्पण कर देंगे, पर वहाँ भी घोर युद्ध हुआ, जिसमें ५०० भारतीय मारे गए और ७० से ऊपर कैद हुए। तत्पश्चात् वे नगर छोड़कर चले गए।

वजीर[1] का युद्ध

इस युद्ध में सिकंदर की कितनी सेना मारी गई और कितनी घायल हुई, इसकी चर्चा इस इतिहासकार ने बिल्कुल नहीं की।

इस युद्ध का वर्णन तीन इतिहासकारों ने किया है। अर्रियान (पु० ४, अ० २८-२९) लिखता है कि यह एक दुर्गम पहाड़ी किला था, जिसकी रक्षा एक ओर से सिंधु नदी करती थी। सिकंदर ने सुना कि इसको हरक्यूलस देवता[3] विजय नहीं कर सका, इसलिये उसको इस दुर्ग के हस्तगत करने

ओरनियम[2] का युद्ध

१—यह स्थान स्वात और सिंधु नदी के बीच में था। अब यह स्थान 'वीरकोट' कहलाता है।

२—इस स्थान का पता अभी संदिग्ध है। कुछ विद्वान् इसको महावन नामक स्थान में मानते हैं जो अटक के समीप है। 'भारतीय इतिहास की रूप-रेखा' में लिखा है कि यह स्थान सिंधु नदी के पश्चिम 'परिसर' नामक पहाड़ पर था।

३—इसको हिंदुओं का 'हनुमान्' समझना चाहिए।

की प्रबल उत्कंठा हुई। उसके ऊपर जाने का रास्ता अज्ञात था, पर उसके पास के कुछ रहनेवालों ने रास्ता बतलाने के लिये कहा। अतः टाल्मी कुछ सेना लेकर बड़ी कठिनाई से ऊपर चढ़ा। कुछ दूर जाकर ऊपर से एक प्रकाश दिखलाई पड़ा। दूसरे दिन वह अपने सिपाहियों को लेकर आगे बढ़ा, पर दुर्ग-निवासियों के रोकने से और आगे न जा सका। फिर वे लोग टाल्मी की सेना पर टूट पड़े। घोर युद्ध हुआ। अंत में लड़ते-भिड़ते रात ढलने पर भारतीय सेना हट गई।

फिर सिकंदर ने इसी देश के एक जानकार विश्वासपात्र आदमी को नियुक्त किया और उसके साथ रात को एक पत्र टाल्मी के पास भेजा कि वह वहाँ अपने बचाव के लिये अधिक चिंता न करे। जब वह (सिकंदर) स्वयं वहाँ पहुँचे तब दुर्ग-निवासियों पर आगे और पीछे से आक्रमण किया जाय। तदनुसार सिकंदर प्रातःकाल अपनी छावनी से चलकर दोपहर को वहाँ जा पहुँचा। ऊपर चढ़ने में भारतीय और मकदूनियों से घोर युद्ध होता रहा। तीसरे पहर सिकंदर की सेना किसी तरह टाल्मी से जा मिली, पर उस दिन पर्वत की चोटी तक ये लोग नहीं पहुँच सके। दूसरे दिन सिकंदर ने अपने सिपाहियों से १००-१०० खूँटे बनवाए और उनका एक ऊँचा ढेर लगवा दिया, जिसके ऊपर से उसके सिपाही किलेवालों पर तीर फेंक सकें। उसके दूसरे दिन उसकी सेना किलेवालों पर गोफन द्वारा पत्थर फेंकने लगी। तीन दिन तक खूँटों का ढेर लगता रहा। चौथे दिन यूनानी सेना किलेवाली पहाड़ी के बराबर एक पहाड़ी पर पहुँच गई। भारतीय सैनिकों ने यह देखकर कि यूनानी उनके निकट आ गए हैं, सिकंदर से कहला भेजा कि वे अपनी पहाड़ी छोड़ देने को तैयार हैं यदि उनको सुरक्षित निकल जाने दिया जाय। सिकंदर ने उनको चले जाने की आज्ञा दे दी और पहाड़ी के पास से अपने नाके हटा लिए। पर जैसे ही वे पहाड़ी छोड़कर हटने लगे, सिकंदर और उसकी सेना ऊपर चढ़ गई। फिर सिकंदर के संकेत करने पर उसके सिपाही भारतीयों पर, जो पीछे हट रहे थे, टूट पड़े और उनमें से बहुतों का वध कर डाला और कुछ लोग

घबराहट में गिर-पड़कर मर गए। इस प्रकार सिकंदर ने उस पहाड़ी पर अधिकार जमा लिया। वहाँ उसने मारे खुशी के बलिदान किया और एक किला बनवाया।'

पाठक देखें कि यहाँ भी सिकंदर ने विश्वासघात किया है।

करटियस ने इस घटना का दूसरा ही वृत्तांत लिखा है। वह (पु० ८ अ० ११) लिखता है कि 'सिकंदर इस किले की मजबूती को देखकर और यह सुनकर कि हरक्यूलस इसको नहीं पा सका था, बहुत ही चिंतित हुआ। इतने में एक बुड्ढा अपने दो लड़कों को लेकर आया और उसने सिकंदर से कहा कि यदि उसको प्रचुर पुरस्कार दिया जाय तो वह किले का रास्ता बतला सकता है। सिकंदर ने उसको ८० टालेंट[1] देने का वादा किया और उसके एक लड़के को गिरवी रख लिया। फिर उसने चारुस और एक सरदार के साथ, जिसका नाम भी सिकंदर था, ३० चुने हुए आदमियों को भेजा। यह एक जोखिम की चढ़ाई थी, इसलिये सबकी राय हुई कि सिकंदर इसमें न जाय। पर पीछे सिगनल होने पर वह स्वयं समस्त मकदूनियों को लेकर दौड़ा। उसके बहुत से सिपाही नष्ट होकर सिंधु नदी में गिरकर बह गए। जो पहाड़ी के ऊपर चढ़ने का साहस करते थे, उन पर किलेवाले बड़े बड़े पत्थर लुढ़काते थे, जिससे उनका सिर फूट जाता था और वे नीचे गिर जाते थे। किसी तरह चारुस और सिकंदर (द्वितीय) ऊपर चढ़ गए और हाथोंहाथ युद्ध होने लगा। अंत में भारतीयों के तीरों की बौछार से सिकंदर के ये दोनों सरदार बिँधकर मारे गए।

यह देखकर सिकंदर हताश हो गया और उसने अपनी सेना को पीछे हटने के लिये संकेत किया। इस विजय से किलेवाले अग्नि जलाकर दो रात तक आनंद मनाते रहे। तीसरे दिन सन्नाटा हो गया। सिकंदर को पता लगा कि वे लोग किला खाली करके भाग

१—यह एक प्राचीन यूनानी सिक्का था, जिसका मूल्य लगभग २२५ पौंड होता था।

रहे हैं। यह सुनकर उसने अपने सिपाहियों को हुक्म दिया कि वे सब खूब ज़ोर से चिल्लाएँ। रात का समय था। उनकी एकाएक चिल्लाहट सुनकर किलेवाले घबड़ाकर भागने लगे। कुछ तो नीचे गिर-कर मर गए और कितनों के हाथ-पाँव टूट गए। सिकंदर ने इस अवसर से लाभ उठाकर किले पर कब्जा कर लिया और इस विजय की खुशी में, जो उसके बाहुबल से नहीं बल्कि संयोगवश धोखे में किलेवालों की व्यर्थ घबड़ाहट से हुई थी, मिनर्वा[1] के सम्मान में मिह-राब बनवाया। सिकंदर को जिस बुड्ढे ने किले पर जाने का रास्ता बतलाया था, उसको कुछ इनाम दिया, पर उतना नहीं, जितना वादा किया था।

डियोडोरस ने भी (पु० १७ अ० ८५) लगभग ऐसा ही लिखा है, पर उसने चारुस इत्यादि के मारे जाने, किलेवालों पर भागते समय आक्रमण करने, पथ-प्रदर्शक को इनाम देने और विजय के पश्चात् सिकंदर के मिहराब बनवाने का वर्णन नहीं किया है।

अब हम सिकंदर और पुरु के प्रसिद्ध युद्ध का वर्णन करते हैं। अरियान ने इस युद्ध का वर्णन (पु० ५, अ० १८-१६) इस प्रकार किया है कि पुरु रण-क्षेत्र में बड़े साहस के साथ अपना कर्तव्य-पालन कर रहा था। न केवल एक सेना-

पुरु से युद्ध

पति के समान, बल्कि एक वीर योधा की तरह काम करते हुए जब उसने देखा कि उसके सवार और कुछ हाथी मरे हुए पड़े हैं और कुछ बिना महावत के इधर-उधर घूम रहे हैं, और उसकी सेना के बहुत से लोग मारे गए हैं, तब उसने ईरान के डायरस की तरह मैदान नहीं छोड़ा जो उसके सिपाहियों के भागने के लिये पहला उदाहरण होता, प्रत्युत वह उस समय तक बराबर लड़ता रहा, जब तक उसकी सेना का एक सिपाही भी अपना काम करता

१—यह यूनानियों के युद्ध और विजय की देवी थी जिसे हिंदुओं की दुर्गा समझना चाहिए।

रहा। अंत में उसके दाहिने कंधे पर एक घाव लगा, फिर भी वह रणक्षेत्र में बराबर चलता फिरता रहा[१]।

सिकंदर पुरु की वीरता से प्रभावित होकर उसको बचाना चाहता था। इसलिये उसने पहले आंभी को उसके पास भेजा। वह घोड़े पर चढ़कर गया और पुरु के हाथी के पास पहुँचकर उससे कहा कि 'अब तुम्हारा भागना संभव नहीं है अतः सिकंदर का संदेश सुन लो'। पुरु ने घूमकर देखा कि उसका पुराना शत्रु आंभी बोल रहा है। उसने आवेश में आकर भाले से उस (आंभी) पर वार किया। आंभी तुरंत घोड़ा दौड़ाकर भाग गया, नहीं तो उसका प्राण बचना कठिन था। सिकंदर ने इसके पश्चात् कई दूत भेजे। अंत में मेरीस (Merees) को भेजा जो पुरु का पुराना मित्र था। जिस समय वह पहुँचा, पुरु प्यास के मारे विकल था इसलिये पानी पीने को हाथी से नीचे उतर आया और मेरीस से तुरंत सिकंदर के पास पहुँचाने को कहा।

सिकंदर ने जब यह सुना कि पुरु आ रहा है, वह घोड़े पर चढ़कर उसके स्वागत के लिये आगे बढ़ा। सिकंदर पुरु के विशाल डील-डौल को देखकर, कि वह पाँच हाथ लंबा है, दंग रह गया। उसने देखा कि पुरु निर्भीक होकर बड़ी आन-बान के साथ आ रहा है, यद्यपि वह जानता था कि सिकंदर उसका शत्रु है। सिकंदर पुरु से उसी तरह मिला जैसे एक वीर दूसरे वीर से, जो विदेशियों से अपना राज्य बचाने के लिए युद्ध कर रहा हो, मिलता है।

१—Merindle ने लिखा है 'The courage and skill with which the Indian King contended against the greater soldier of antiquity, if not of all time, are worthy of the highest admiration and present a striking contrast to the incompetent generalship and pusillanimity of Darius (Invasion of India by Alexander, the Great, new edition pp. 346)

सिकंदर ने पुरु से पहले पूछा कि तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार किया जाय। पुरु ने उत्तर दिया कि जैसा एक राजा दूसरे राजा से करता है। सिकंदर ने कहा कि यह तो मैं आप ही करूँगा, बतलाओ इसके सिवा तुम्हारे लिये और क्या करूँ। पुरु ने कहा, जो कुछ मैंने पहले उत्तर दिया है उसमें सब बातें आ गई हैं।

इस पर सिकंदर ने न केवल पुरु का राज्य उसको लौटा दिया, बल्कि बहुत कुछ उसको अपनी ओर से दिया; और उसको अपना घनिष्ठ मित्र बना लिया। (अ० १९)

इस इतिहासकार ने इसी पुस्तक के १८ वें अध्याय में लिखा है कि इस युद्ध में पुरु के हाथियों के घायल होकर बिगड़ जाने और भागने से उसकी सेना को बहुत हानि पहुँची थी। यूनानियों की ओर बड़ा मैदान था, इसलिये वे हाथियों के दौड़ने के समय इधर-उधर भागकर बच जाते थे तथा इस युद्ध में पुरु के दो लड़के भी काम आए थे।

पर उसने उभय पक्ष की हानि का जो ब्यौरा दिया है वह सर्वथा असंभव और मिथ्या मालूम होता है। वह लिखता है 'इस लड़ाई मे पुरु के २० हजार प्यादे, ३ हजार सवार और सारे महावत और रथी मारे गए थे और मकदूनियों के केवल ३१० सिपाहियों की क्षति हुई थी।'

पाठक विचार करें कि आठ घंटे के युद्ध में सिकंदर के आदमी केवल ३१० ही मरे, यह कहाँ तक विश्वसनीय है। इसका खंडन आगे करटियस के वर्णन में मिलेगा जिसने स्पष्ट लिखा है कि यह कहना कठिन है कि 'किस ओर अधिक हानि हुई थी'।

करटियस ने इस घटना का वर्णन दूसरी ही तरह से कुछ अधिक विस्तार के साथ किया है। वह (पु० ८, अ० १४) लिखता है :—

जब सिकंदर की सेना प्रातःकाल झेलम पार करके इस ओर पहुँची तब पुरु ने पहले समझा कि यह उसके मित्र अभिसार-नरेश की

सेना है, जो उसकी सहायता के लिये आई है, जैसा कि उससे पहले तय हो चुका था। पर जैसे ही आकाश निर्मल हो गया, उसने देखा कि शत्रु की सेना है। तब उसने १०० रथ और ४००० सवारों को उसके रोकने के लिये भेजा। प्रत्येक रथ में चार घोड़े लगते थे, और उस पर छः सिपाही बैठते थे। उनमें से दो ढाल लिए रहते थे और दो धन्वा, जो दोनों ओर बैठते थे, तथा दो रथी रहते थे। ये लोग भी सशस्त्र होते थे, जो लड़ाई निकट होने पर तीर छोड़ते थे। पर ये रथ उस समय बहुत उपयोगी सिद्ध नहीं हुए, क्योंकि पानी बहुत बरसा था, जिससे पृथ्वी पर पाँव फिसलता था। अतः घोड़े उस पर दौड़ नहीं सकते थे और दलदल में फँस जाते थे।

सिकंदर के सिपाहियों के पास हल्के हथियार थे और उनका बोझ हल्का था। सिकंदर ने परडीकस (Perdiccas) को सवारों के साथ पुरु की सेना के दाहिने बाजू पर आक्रमण करने के लिये नियुक्त किया। बड़े वेग के साथ युद्ध आरंभ हुआ। पुरु के रथ बड़ी तेजी के साथ रणक्षेत्र में दौड़ने लगे, जिससे मकदूनियों की पैदल सेना, जो आगे थी, उथल-पुथल हो गई और बहुत से लोग दबकर नष्ट हो गए। यह कहना कठिन है कि किस ओर अधिक हानि हुई थी। पर वर्षा के कारण पृथ्वी फिसलती थी, इसलिये बहुत से रथ नीचे गिर गए; कुछ उलट-पुलट गए और कुछ भागकर शत्रु के दल में से होते हुए पुरु की सेना में जा पहुँचे तथा कुछ गड्ढों में गिर गए। पुरु ने, जो बड़े परिश्रम के साथ युद्ध का संचालन कर रहा था, जब देखा कि उसके रथ तितर-बितर हो गए हैं, तब उसने अपने मित्रों को, जो उसके निकट थे, हाथी दिए और उनके पीछे धन्वियों और लड़ाई के ढोल बजानेवालों को किया। भारतीय सेना हरक्यूलस[1] की मूर्ति आगे लिए हुए थी।

जिस समय पुरु के सिपाहियों ने बड़े आवेश के साथ आक्रमण किया, मकदूनी भारी-भरकम हाथियों और स्वयं पुरु को

१—यह करटियस का भ्रम है। यहाँ इस नाम का कोई देवता नहीं था।

देखकर, जो खूब लंबा-चौड़ा और सब से ऊँचे हाथी पर सवार था, बड़े असमंजस में पड़ गए[१]। हाथियों का झुंड मानो ऊँची पहाड़ियों की पंक्ति थी।

सिकंदर ने यह भयंकर दृश्य देखकर कहा कि 'अहो! मैं अंत में ऐसे आतंक को अपने सामने देखता हूँ जो मेरे बल और पराक्रम की स्पर्धा कर रहा है। मेरे शत्रु बड़े बड़े पशु और असाधारण वीर योधा हैं।'

फिर एक ओर से स्वयं सिकंदर और दूसरी ओर से कोइनस ने पुरु के दल पर हमला किया। पुरु ने हाथियों को सिकंदर के सवारों से युद्ध करने को आगे किया, पर हाथी भारी-भरकम होने से घुड़सवारों के बराबर नहीं दौड़ सके। पुरु के सिपाहियों के तीर भारी और बड़े थे; अतः इसलिये कि निशाना खूब गहरा लगे, धनुष को पृथ्वी पर रखना पड़ता था। पर भूमि पानी के कारण फिसल रही थी। अतः जब भारतीय बाण चलाते थे तब मकदूनी बीच में थोड़ा सा अवसर पाकर जल्दी-जल्दी कूदकर बच जाते थे।

दूसरी ओर पुरु के सेनानायकों का एकमत न था। एक कहता था, पंक्ति-बद्ध हो जाओ तो दूसरा कहता था, अलग-अलग हो जाओ। कोई कहता था ठहर जाओ तो कोई कहता था शत्रु के पीछे से आक्रमण करो। इस प्रकार से पुरु की सेना कुछ तितर-बितर हो गई। पर पुरु ने ऐसी अवस्था में बड़े धैर्य से काम लिया। उसने अपने कुछ सिपाहियों को एकत्र करके हाथियों के साथ सिकंदर के दल पर आक्रमण किया। हाथियों के भीषण नाद से सिकंदर के घोड़े भड़क उठे और उसके सैनिक भी दहलकर भागने के लिये स्थान ढूँढ़ने लगे।

१—"The Greeks were loud in praise of Indians; never in all their eight years of constant warfare had they met with such skilled and gallant soldiers, who, moreover, surpassed in stature and bearing all the other races of Asia." (General Chesucy's lecture on the Indian campaign of Alexander.)

सिकंदर ने जब यह देखा तब कुछ सिपाहियों को हल्के शस्त्र देकर नियुक्त किया कि वे पुरु के हाथियों और महावतों पर तीरों की वर्षा करें। इससे हाथी कुछ डरे, पर कुछ मकदूनी उनके पाँवों के नीचे दबकर कुचल गए तथा कुछ हाथी शत्रुओं को सूँड़ से उठाकर अपने महावतों के पास पहुँचाने लगे। इससे वे लोग बहुत भयभीत हुए और लड़ाई बहुत लंबी हो गई।

अंत में मकदूनी कुल्हाड़े इत्यादि से हाथियों की सूँड़ें और पाँव काटने लगे। इससे वे घबड़ाकर अपने दल की ओर भागे और अपने महावतों को नीचे गिराकर कुचलने लगे। पुरु ने, जो उस समय अपने स्थान पर अकेला था, शत्रु-दल के अनेक योधाओं को तीर से मारकर गिरा दिया। पर जब मकदूनियों ने उसपर आक्रमण किया तब उसकी छाती और पीठ पर नौ घाव लगे, फिर भी उसने लड़ाई से हाथ नहीं खींचा। पर कुछ रक्त उसके शरीर से बाहर निकल गया था, इसलिये उसके बाण अधिक चोट नहीं कर सकते थे। उसके हाथी को कोई घाव नहीं लगा था। वह पुरु को आगे लिए जा रहा था और शत्रुओं को, जो सामने पड़ते थे, कुचल डालता था।

अंत मे पुरु के महावत ने देखा कि उसका स्वामी घायल हो जाने से शिथिल हो रहा है, संभवत: गिर पड़े, इसलिये वह हाथी लेकर भागा। सिकंदर ने उसका पीछा किया। पर उसका घोड़ा घायल होकर गिर पड़ा इसलिये वह दूसरे घोड़े पर चढ़ने के लिये गया। इस बीच में पुरु कुछ दूर निकल गया। वहाँ तक्षशिला-नरेश का भाई पहुँचा और उसने पुरु से कहा कि 'इसी में कुशल है कि तुम सिकंदर को आत्म-समर्पण कर दो; शायद ऐसा करने से तुम बच जाओ।' पुरु उस समय, यद्यपि शरीर से अधिक रक्त निकल जाने से निर्बल हो रहा था, यह सुनकर बड़े आवेश में आया और बोला कि अरे! तू उसी देश-द्रोही ताक्षलि[१] का भाई है, जिसने अपना देश और राज्य सिकंदर को दे दिया है; और फिर एक बाण ऐसे जोर के

१—यह पदवी सिकंदर ने तक्षशिला के राजा आभी को दी थी।

साथ मारा कि वह उसकी छाती को बेधकर उसकी पीठ की ओर से निकल गया।

इसके पश्चात् पुरु ने अपने हाथी को तेजी के साथ बढ़ाया, पर उस समय वह घायल हो जाने से अधिक नहीं चल सकता था। अतः वह अपने सिपाहियों को इकट्ठा करके, उन शत्रुओं से जो उसका पीछा कर रहे थे, युद्ध करने लगा। सिकंदर उस समय वहाँ पहुँच गया और देखा कि हठी पुरु और उसकी सेना घायल हो गई है, फिर भी वह युद्ध से हाथ खींचना नहीं चाहता।

अब पुरु अपने हाथी से नीचे फिसलने लगा। महावत ने समझा कि वह नीचे उतरना चाहता है, इसलिये उसने हाथी को बिठाल दिया। यह देखकर और हाथी भी बैठ गए। इस प्रकार से पुरु और उसके हाथी सिकंदर की कैद में आ गए। सिकंदर ने समझा कि पुरु की मृत्यु हो गई है, इसलिये उसने अपने आदमियों को हुक्म दिया कि उसका हथियार ले ले, पर जैसे ही मकदूनियों ने ऐसा करना चाहा, हाथी ने पुरु को उठाकर अपनी पीठ पर बिठाल लिया। इस पर मकदूनी हर ओर से हाथी पर तीर बरसाने लगे, जिससे हाथी मर गया। तब लोगों ने पुरु को उठाकर रथ पर कर दिया। अब पुरु ने अपनी आधी आँखें खोलीं। सिकंदर उसकी दशा से प्रभावित होकर सारी शत्रुता भूल गया और उसने उससे कहा 'हे अत्यंत दुःख-दायक मनुष्य ! किस पागलपन से तू मेरा सामना करने चला था ? क्या तूने मेरी प्रसिद्धि नहीं सुनी थी ? क्या तूने नहीं देखा कि मेरी अधीनता मान लेने पर ताक्षलि पर मैंने कितनी कृपा की है ?' पुरु ने कहा कि 'तू पूछता है इसलिये मैं उत्तर देता हूँ कि मैं समझता था, मुझसे बड़ा कोई वीर नहीं है, क्योंकि मैं अपने बल को जानता था। तेरी शक्ति की मुझे जानकारी न थी। युद्ध के परिणाम से मालूम हुआ कि तू भी वीर है। पर तेरे वीर होने पर भी मैं अपने को भाग्यवान् समझता हूँ।' फिर सिकंदर ने पूछा कि 'तेरे साथ कैसा व्यवहार किया जाय ?' पुरु ने कहा कि जैसा आज के युद्ध से तुझे शिक्षा मिली हो।

सिकंदर ने हुक्म दिया कि बड़ी सावधानी से पुरु के घावों का उपचार किया जाय। और जब वह स्वस्थ हो गया तब सिकंदर ने उसके राज्य से अधिक उसको दिया।

अब थोड़ा औरों का भी वर्णन सुन लीजिए।

डियोडोरस (पु० १७, अ० ८८) लिखता है कि 'मकदूनियों के घुड़सवारों ने युद्ध आरंभ किया और भारतीयों के लगभग सभी रथों को नष्ट कर दिया। इसपर पुरु के हाथियों ने आगे बढ़कर कुछ मकदूनियों को पाँव के नीचे दबाकर मार डाला, कुछ लोगों को सूँड़ से उठाकर पृथ्वी पर पटक दिया और कितनों को दाँतों से चीर डाला। इस पर मकदूनियों ने लंबे-लंबे भाले चलाकर गजारोहियों को मारना आरंभ किया और हाथियों को इस प्रकार से घायल किया कि उनके सवार गिरकर हाथियों के पाँवों के नीचे कुचल गए।

'यह देखकर पुरु ने, जो सबसे मजबूत हाथी पर था, अन्य हाथियों को अपने इर्द-गिर्द इकट्ठा किया, जो अभी तक काबू में थे और फिर बड़े वेग के साथ शत्रुओं पर हमला किया। उसने स्वयं अपने हाथ से बहुत से मकदूनियों को मार डाला, क्योंकि वह किसी योधा से बल में कम न था। वह पाँच हाथ लंबा था। उसकी पेटी साधारण आदमियों से दूनी थी, इसलिये उसके हाथ से जो भाला चलता था वह मानो गोफन से वेग के साथ गोली चलती थी, इसलिये जो मकदूनी उसके सामने थे वे उसके असाधारण साहस और आश्चर्य-जनक वीरता से बहुत नष्ट हुए।

'यह दशा देखकर सिकंदर ने तीरंदाज और हल्के शस्त्रवाले सिपाहियों को भेजा और कहा कि उनका लक्ष्य पुरु ही होना चाहिए। वे लोग वैसा ही करने लगे। पुरु ने बड़ी वीरता से उनके साथ युद्ध किया। अंत में वह घावों से अचेत हो गया और सहायता के लिये हाथी से पृथ्वी पर उतार लिया गया। इतने में यह खबर उड़ी कि पुरु की मृत्यु हो गई। यह सुनकर उसकी कुछ सेना भाग गई और कुछ लड़ते-भिड़ते मारी गई।

'इस युद्ध में १२ हजार भारतीय मारे गए, जिनमें पुरु के दो पुत्र और कुछ प्रसिद्ध सेना-नायक थे; ९ हजार कैद हुए और ८० हाथी पकड़ लिए गए। पुरु की चिकित्सा उसके वैद्यों द्वारा की गई। सिकंदर की ओर केवल २८० सवार और ७०० से ऊपर पैदल मरे थे।'

पाठक स्वयं विचार सकते हैं कि इस वर्णन में उभय पक्ष की हानि जो दिखलाई गई है वह कितनी अविश्वसनीय है।

इस संबंध मे अब केवल प्लूटार्क का वर्णन रह गया, जो इस प्रकार है,—

वह अपनी पुस्तक के ६०वें अध्याय में लिखता है कि यह युद्ध क्योंकर आरंभ हुआ ? इसका वर्णन सिकंदर ने स्वयं अपने एक पत्र में लिखा है कि मकदूनियों ने पुरु के दल पर दोनों बाजुओं से हमला किया, जिससे उसके सैनिक मध्य में जाने लगे, पर वहाँ हाथियों की सेना होने से जगह कम थी। पुरु का हाथी सबसे बड़ा था और ऐसा ही वह (पुरु) भी विशाल-काय था। उसका हाथी अपने मालिक का बहुत ही शुभचिंतक था। उसने अपने स्वामी की रक्षा के लिये बहुत उद्योग किया और उसके आक्रमण-कारियों को पददलित किया। परंतु यह देखकर कि पुरु आघात के कारण नीचे गिरना चाहता है, धीरे से बैठ गया और अपनी सूँड़ से उसके शरीर से बाण निकालने लगा।

जब पुरु कैद हो गया, सिकंदर ने उससे पूछा 'तुम्हारे साथ कैसा बर्ताव किया जाय ?' पुरु ने उत्तर दिया 'जैसा नरेशों के साथ किया जाता है।' फिर सिकंदर ने पूछा 'कुछ और चाहते हो ?' पुरु ने कहा कि पहले उत्तर में सब बातें आ गई हैं।

इस पर सिकंदर ने पुरु को उसका देश लौटा दिया और उसको 'क्षत्रप' (Satrap) की उपाधि प्रदान की।

इन इतिहास-कारों के वर्णन को ध्यानपूर्वक मिलाकर पढ़ने से जो निष्कर्ष निकलता है और इसमें सत्य की कितनी मात्रा है, इसका निर्णय हम विचारशील पाठकों पर छोड़ते हैं; क्योंकि इस लेख में इसकी विवेचना के लिये स्थान नहीं है।

सामान्य इतिहासों में, जहाँ तक भारत का संबंध है, सिकंदर के साथ इसी युद्ध का कुछ टूटा-फूटा-सा वर्णन मिलता है, इसलिये मूलस्रोत से हमने इसका पूरा वृत्तांत लिखा है।

इस युद्ध मे यद्यपि संयोगवश पुरु की हार हो गई थी—यदि उसे हार समझा जाय—तथापि उसकी असीम वीरता और अनुपम पराक्रम से मकदूनियों के ऐसे दाँत खट्टे हो गए थे कि सिकंदर के लाख हाथ-पाँव मारने पर भी, उसके सिपाहियों का भारत में आगे बढ़ने का साहस नहीं हुआ। सच पूछिए तो सिकंदर से भिड़कर, पुरु ने, ढाल बनकर, शेष भारत को उसके रक्तपान और नोच-खसोट से बचा लिया था। भारत के प्रति पुरु की यह बलि कभी भूलने योग्य नहीं है। हम इसका विशद वर्णन इन्हीं इतिहासकारों के मुख से आगे करेंगे। यहाँ लगे हाथ दो और छोटी-मोटी लड़ाइयों का वर्णन किए देते हैं, जिनमें मुट्ठी भर भारतीयों ने बड़ी दृढ़ता के साथ सिकंदर का मुकाबला किया था, और अंत में मातृ-भूमि की रक्षा के लिये उन्होंने अपनी बलि चढ़ा दी थी। झेलम नदी के किनारे 'मालव' नाम की एक जाति रहती थी, जो रण-कौशल में बहुत ही प्रसिद्ध थी। यूनानियों ने इनका नाम 'मैलोई' लिखा है। कुछ इतिहासकारों का मत है कि ये लोग मुलतान के निवासी थे। सिकंदर ने उनके नगर को घेर लिया और सीढ़ी के द्वारा प्राचीर पर चढ़ने लगा, पर सीढ़ी टूट जाने से वह नीचे गिर पड़ा। इस पर मालवियों ने सिकंदर पर वार किया, जिसमें वह बहुत घायल हुआ। उन लोगों ने एक बाण इतने जोर के साथ मारा कि सिकंदर के वक्षःस्थल को बेधता हुआ उसकी रीढ़ की हड्डी तक पहुँच गया, पीछे दवा-दारू से बड़ी कठिनाई से उसकी जान बची। यह प्लूटार्क का वर्णन है जिसको उसने अपनी पुस्तक के ६३वें अध्याय में लिखा है।

मालवियो से युद्ध

अरियान और करटियस ने भी इस घटना का लगभग ऐसा ही वर्णन किया है। (देखिए क्रमशः उनकी पुस्तक ६ अध्याय १० तथा

पु० ६ अ० ५।) करटियस की इसी नवीं पुस्तक के चौथे अध्याय में दो वर्णन और भी उल्लेखनीय हैं। उसने लिखा है कि 'शिविओं से मुठभेड़ होने के पश्चात् सिकंदर ने अग्लसियन (Agalassians) के नगर पर घेरा डाला, पर उन्होंने ऐसी वीरता से रोका कि मकदूनियों को बहुत हानि उठाकर पीछे हटना पड़ा। अंत में जब सिकंदर ने अपना घेरा न उठाया तब उन्होंने अपनी रक्षा जोखिम में देखकर अपने घरों में आग लगा दी और (राजपूतों के जौहर का अनुसरण करते हुए) अपने को सपरिवार उसी में डालकर भस्म कर डाला।'

इस वर्णन से विदित होता है कि वे लोग स्वतंत्रता देवी के इतने बड़े पुजारी थे कि प्राणों की बाजी लगाकर उन्होंने अधीनता के अपमान से अपनी रक्षा की थी।

दूसरी घटना इस प्रकार है कि 'इसके पश्चात् सिकंदर क्षुद्रक (Sudracae) और मालवों के राज्य में आया, जो पहले तो एक दूसरे से लड़ा-भिड़ा करते थे, पर अब वे सिकंदर के मुकाबले में एक हो गए। उनकी सेना में ९० हजार पैदल, १० हजार सवार और ९०० जंगी रथ थे। मकदूनियों ने समझ रखा था कि अब वे सब संकटों से पार हो गए हैं, पर जब उन्होंने देखा कि अभी उनको एक और नई लड़ाई लड़नी है जिसमें उनको विपक्षी भारत की सबसे बड़ी लड़ाकू जातियाँ हैं तब भय के मारे, जिसकी उनको आशा न थी, उनके होश उड़ गए। वे लोग विद्रोहात्मक भाषा में फिर अपने राजा (सिकंदर) की निंदा करने लगे। वे लोग एक ऐसे भयानक जाति-वालों के सामने थे, जिनके विषय में उनकी धारणा थी कि बिना हमारा रक्त बहाए ये लोग सिकंदर को समुद्र तक पहुँचने का रास्ता न देंगे।' पीछे सिकंदर ने उनको बहुत कुछ समझा-बुझाकर युद्ध के लिये तैयार किया था।

इसका वर्णन केवल अरियान ने किया है। यह (पु० ५, अ० २४) लिखता है कि 'इस नगर के घेरे में जो युद्ध हुआ था, उसमें भारतीयों की ओर के १७ हजार सैनिक मारे गए थे, ७० हजार पैदल

और ५०० सवार कैद हुए और ३०० रथ पकड़े गए थे। पर उधर सिकंदर के केवल १०० आदमी मारे गए और १२०० घायल हुए थे, जिनमें कुछ बड़े-बड़े सरदार भी थे।' कहना न होगा कि इस वर्णन की संख्या कितनी अविश्वसनीय है।

सगल[1] की लड़ाई

फिर आगे इसी इतिहासकार ने सिकंदर के एक अत्यंत नीचता-पूर्ण कृत्य का वर्णन इस प्रकार किया है कि 'जब नगरवाले भाग गए तब वहाँ ५०० घायल रह गए थे, उन सब को सिकंदर ने वध करवा डाला।'

यह है उन छोटी-बड़ी लड़ाइयों का वृत्तांत, जो भारत में सिकंदर के साथ हुई थीं। यद्यपि इन युद्धों में, इन इतिहासकारों के कथनानुसार, विजय-लक्ष्मी सिकंदर ही की ओर रही थी, तथापि यह तो मानना होगा जैसा कि एक कवि ने कहा है—

शिकस्तो-फतह नसीबों से है, वले ऐ 'मीर'।
मुकाबला तो दिले-नातवाँ ने खूब किया॥

इसी प्रसंग में लगे-हाथ यह भी बतला देना असंगत न होगा कि पुरु और अभिसार-नरेश के राज्य को छोड़कर उसके आस-पास और जितने छोटे-छोटे राज्य थे उनकी शासन-प्रणाली प्रायः प्रजा-तंत्र थी, जिनके सुप्रबंध की यूनानियों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। विस्तार के लिये पाठकों को श्रीयुत डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल की 'हिन्दू पालिटी'[2] (प्रकरण ८) देखना चाहिए।

हम पीछे कह आए हैं कि पुरु के साथ सिकंदर का जो युद्ध हुआ था, उसमें अंत में यद्यपि पुरु की हार हो गई थी, पर उसने मकदूनी सैनिकों को ऐसे गहरे धक्के दिए थे कि उनका सारा उत्साह छिन्न-भिन्न हो गया था और फिर आगे बढ़ने के लिये उन्होंने हिम्मत नहीं की। इसका वर्णन इन्हीं इतिहासकारों के अनुसार किया जाता है।

सिकंदर की सेना का क्रंदन

१—यह स्थान रावी और चिनाब के बीच में अमृतसर के जिले में पहाड़ की ओर था।

२—'हिंदू राज्यतंत्र' के नाम से इस पुस्तक का अनुवाद नागरीप्रचारिणी, सभा काशी ने प्रकाशित किया है।—संपादक।

अरिंयान (पु० ६ अ० २५-२८) लिखता है कि 'सिकंदर इन सब कामों से निपट कर व्यास के किनारे पहुँचा। उसने सुना कि उस पार के लोग बड़े लड़ाकू और वीर हैं तथा उधर के हाथी सब जगह से उत्तम होते हैं। अत: उसने इरादा किया कि उस ओर जाकर उन पर हमला करे। पर उसके सिपाहियों ने जब यह सुना तो उनकी हिम्मत टूट गई। उन्होंने देखा कि उनका स्वामी एक काम के पश्चात् दूसरा काम तथा एक जोखिम पर दूसरी जोखिम बढ़ाता जाता है, इसलिये उनमे जो कुछ गंभीर थे, चुप रहे। शेष सिपाहियों ने साफ कह दिया कि अब हम आगे न जायँगे। यह रंग देखकर सिकंदर ने अपने सेनानायकों को बुलाया और उनको बहुत कुछ उत्तेजित किया और समझाया-बुझाया कि अब सारी दुनियाँ विजय करने में बहुत थोड़ा रह गया है, हिम्मत न हारो, पर उन लोगों ने भी मौन धारण किया। फिर सिकंदर ने बहुत-कुछ कहा-सुना, तब एक सरदार 'कैनोस' ने सब सैनिकों की ओर से कहा कि घर छोड़े बहुत दिन हुए। अब सिपाही अपने बाल-बच्चों को देखना चाहते हैं। बेहतर होगा कि आप भी चलकर यूनान के शासन-प्रबंध को मजबूत करें और फिर इन सिपाहियों की जगह, जिनके दिल टूट गए हैं, नई सेना दिग्विजय के लिये लेकर आएँ।' सिपाही यह सुनकर बहुत खुश हुए। सिकंदर ने यह सुनकर उस समय सबको बिदा कर दिया।

दूसरे दिन सिकंदर ने अपने सिपाहियों पर क्रोध प्रकट किया और कहा कि यदि तुम लोग साथ नहीं देते तो मैं अकेला आगे जाऊँगा और फिर अपने डेरे में जाकर तीन दिन तक चुप बैठा रहा। उसको आशा थी कि इस बीच में उसके आदमियों के विचार में कुछ परिवर्तन हो जायगा। पर यह सब निष्फल हुआ। टालमी कहता है कि सिकंदर ने बलिदान द्वारा शकुन विचारा, जिसका उत्तर उसके अनुकूल न मिला। तब उसने अपनी सेना को बुलाकर कहा कि अच्छा, तुम लोग घर लौट चलो। यह सुनकर उसकी फौज खुशी के मारे रोने लगी।

डियोडोरस (पु० १७ अ० ६४) लिखता है कि 'सिकंदर की सेना की यह दशा थी कि बहुत से सरदार मारे गए थे, घोड़ों के सुम घिस गए थे, हथियारों में मोरचे लग गए थे, सबकी वर्दियाँ फट गई थीं और वे ईरानी वस्त्र पहनते थे। दूसरी ओर आकाश की यह दशा थी कि ७० दिन से बादल गरजते थे, बिजली चमकती थी और मूसलाधार वर्षा हो रही थी। इस कारण उनकी सेना आगे बढ़ना नहीं चाहती थी। सिकंदर ने उनको बहुत कुछ इनाम-इकराम का लालच दिया, पर वे लोग राजी न हुए। तब उसने लौट जाने का इरादा कर लिया।'

प्लूटार्क ने कुछ अधिक सचाई के साथ इसका वर्णन किया है। वह अपनी पुस्तक के अध्याय ६२ में स्पष्टतया लिखता है कि पुरु के साथ सिकंदर का जो युद्ध हुआ था उसमें मकदूनी सिपाही इतने खिन्न हो गए थे, कि आगे बढ़ने को तैयार न हुए, क्योंकि बड़ी कठिनाई से उन्होंने पुरु के २० हजार पैदल और २ हजार सवारों के मुकाबले में विजय पाई थी[१]। इसलिये सिकंदर के इस प्रस्ताव पर कि गंगा पार करें, कोई तैयार न हुआ। यह समाचार मिला था कि उस पार गंगारिडेई (Gangaridae) और परासी (Prasii) २ लाख पैदल, ८० हजार सवार, ८ हजार जंगी रथ और ६ हजार हाथी लेकर सिकंदर के हमले की प्रतीक्षा कर रहे हैं। सिकंदर ने अपने सिपाहियों से कहा कि यह सब अत्युक्ति है[२]। पर वे राजी न हुए।

सिकंदर अपने सिपाहियों की यह दशा देखकर बहुत क्रोधित हुआ और अपने डेरे में जाकर पृथ्वी पर सोया और उसने विचार किया

१—इस पर एक इतिहासकार लिखता है कि 'इससे पता चलता है कि सिकंदर की सेना में मकदूनी, यूनानी, बाखतरी, आभी के सिपाही तथा बहुत से नए हिंदुस्तानी रँगरूट थे। फिर भी पुरु की २० हजार सेना से लड़कर वे इतने टूट गए थे कि अपनी बहादुरी खो बैठे' (देखो ईरान-बास्तान, जिल्द २ पृष्ठ १८११)

२—'यह अत्युक्ति न थी, क्योंकि उसके बाद ही जब चंद्रगुप्त गद्दी पर बैठा तब उसने (अपने श्वशुर) सिल्यूकस को ५०० हाथी और ६० हजार सेना दी थी, जिससे उसने समस्त भारत को रौंद डाला था। (वही)

कि गंगा के पार न उतरना एक प्रकार से हार मान लेना है, पर उसके मित्रों ने आकर कहा कि ऐसी अवस्था में यही उचित जान पड़ता है कि लौट चला जाय। सिकंदर यह सुनकर और यह देखकर कि उसके सिपाही दरवाजे पर **रोते और चिल्लाते हैं,** नर्म हो गया और लौट जाने के लिए तैयार हो गया।

करटियस ने (पु० ६ अ० २) भी दूसरे शब्दों में लगभग वही बातें लिखी हैं, जो ऊपर के इतिहासकारों ने कही हैं, कि 'किस तरह सिकंदर व्यास नदी के पार अपनी सेना ले जाना चाहता था, पर उसके सिपाहियों की हिम्मत नहीं पड़ी। तब उसने उनको बहुत कुछ समझाया-बुझाया और उनका उत्साह बढ़ाने के लिए कहा कि 'देखो सेथियन, सोगदियन, नेकटेरियन और दहन इत्यादि ये सब हमारी सेना में हैं। पर हे मकदूनियो और यूनानियो! हमको तुम्हारे ही बाहु-बल का भरोसा है।' पर ये सब बातें निष्फल हुईं। किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया, सब लोग चुप रहे और फिर बड़े जोर से **रोने और चिल्लाने लगे।**

इस वर्णन पर किसी टीका-टिप्पणी की जरूरत नहीं है। ऊपर गंगा पार उतरने की जो चर्चा आई है उससे तात्पर्य 'मगध' से है, जहाँ उस समय महापद्म नंद सिंहासन पर था और जिसकी सैनिक शक्ति का विवरण प्लूटार्क ने लिखा है।

इसकी चर्चा सामान्य इतिहास-लेखकों ने बिलकुल छोड़ दी है, इसलिये हम इसका थोड़ा सा वर्णन करना उचित समझते हैं।

प्लूटार्क ने (अ० ५९) लिखा है कि 'भारत के कुछ पंडितों ने वहाँ के कुछ स्वतंत्र राजाओं को सिकंदर के विरुद्ध विद्रोह करने के लिये उकसाया था, इसलिये उसने उन पंडितों को फाँसी दिलवा दी।'

भारतीय पंडितों से सिकंदर का संपर्क

इसपर मेक्रिंडल का नोट है कि ये लोग सिंध के ब्राह्मण थे।

फिर वही इतिहासकार अ० ६४ में लिखता है कि 'भारत के कुछ दार्शनिक-पंडितों को सिकंदर ने कैद कर लिया था, जिन्होंने सिंध

के पश्चिम के एक पहाड़ी राजा सब्बास (Sabbas) को सिकंदर के विरुद्ध भड़काया था। उसने सुना कि ये लोग कठिन प्रश्नों का उत्तर बहुत ही संक्षिप्त और सारगर्भित दे सकते हैं। इसलिये यहाँ से जाते समय उनको बुलाकर कहा कि तुम लोगों से एक-एक प्रश्न किया जायगा। जिसका उत्तर सबसे निकृष्ट होगा, वह पहले मारा जायगा। शेष इसी क्रम से उसके पीछे वध किए जायँगे। इसके निर्णय के लिये एक पंच नियुक्त किया गया और फिर इस प्रकार से प्रश्नोत्तर आरंभ हुआ—

एक से—'संसार में जीवित प्राणी अधिक हैं या मरे हुए?'

उ०—'जीवित, इसलिये कि मृतक मौजूद नहीं हैं।'

दूसरे से—'सबसे बड़े जीव-जंतु जल में हैं या उसके बाहर पृथ्वी पर?'

उ०—'पृथ्वी पर, क्योंकि जलाशय भी तो पृथ्वी का एक अंश है।'

तीसरे से—'सबसे बुद्धिमान् पशु कौन है?'

उ०—'वह है, जिसको अब तक मनुष्य ने नहीं जाना अथवा नहीं जानता।'

चौथे से—'सब्बास को तुमने क्यों बहकाया था कि वह हमारे साथ विद्रोह करे?'

उ०—'इसलिये कि वह या तो गौरव के साथ जीवित रहे या सम्मानपूर्वक प्राण दे दे।'

पाँचवें से—'सबसे पहले दिन हुआ या रात हुई थी?'

उ०—'दिन, पर उसका अस्तित्व रात से केवल एक दिन पहले था।'

सिकंदर को यह सुनकर आश्चर्य हुआ। पंडित ने कहा कि विलक्षण प्रश्नों का उत्तर भी विलक्षण हुआ करता है।

छठें से—'मनुष्य क्योंकर अपने को सब का मित्र बना सकता है?'

उ०—'इस प्रकार से कि जब मनुष्य सबसे अधिक बलवान् हो तब ऐसा व्यवहार रखे कि उससे कोई भयभीत न हो।'

सातवें से—'मनुष्य किस प्रकार से देवता बन सकता है?'

उ०—'ऐसा काम करे, जिसका करना मनुष्य के लिये असंभव हो।'

आठवें से—'जीवन अधिक बलवान् है या मृत्यु?'

उ०—'जीवन, क्योंकि उसमें हर प्रकार की आपदाओं के सहन करने की शक्ति है।'

नवें से—'मनुष्य को कब तक जीवित रहना अच्छा है?'

उ०—'जब तक वह मृत्यु को जीवन से उत्तम न समझे।'

सिकंदर ने मध्यस्थ से पूछा कि तुम क्या व्यवस्था देते हो? उसने कहा कि सब ने एक दूसरे से भद्दा और निकम्मा उत्तर दिया है। सिकंदर ने कहा कि तूने बेईमानी का फैसला दिया है, इसलिये सब से पहले तू ही मारा जायगा। उसने कहा नहीं, जब तक तू अपने वचन से न फिरे, क्योंकि तूने कहा था कि जो सबसे बुरा जवाब देगा वह सबसे पहले मारा जायगा।

अंत में सिकंदर ने उन पंडितों को भेंट देकर विदा कर दिया।

फिर इसी इतिहासकार ने अ० ६५ में लिखा है कि सिकंदर ने 'वंसिक्रटिस' को भेजा कि भारत के कुछ तत्त्वदर्शियों को बुला लाए। वह 'कलानोस' और 'डंडमिस' के पास गया। ये लोग पहले आने को तैयार न थे फिर ताचिल के आग्रह से 'कलानोस' आया, जिसका असली नाम 'स्फिनेस' बतलाया जाता है। उसने आकर एक बड़ी सूखी खाल मँगवाई और उसके एक कोने पर पाँव रखा। उसका शेष भाग उठ गया। इसी प्रकार वह हर कोने पर गया और खाल की वही दशा हुई। फिर वह बीच में खड़ा हुआ। तब खाल बराबर हो गई। इससे उसका आशय सिकंदर को यह उपदेश देने का था कि वह अपनी राजधानी में रहकर सुचारु रूप से राज्य करे, न कि सुदूर देशों में इधर-उधर दौड़ता फिरे।

डियोडोरस (पु० १७ अ० १०७) लिखता है 'सिकंदर 'कलानोस' को अपने साथ ले गया। जब वह ईरान में सोशियाना की सीमा पर पहुँचा तब 'कलानोस' ने, जो दर्शन-शास्त्र में पारंगत था, और जिसका सिकंदर बहुत आदर करता था, अपने जीवन को एक विचित्र ढंग से समाप्त करना चाहा। वह उस समय ७३ वर्ष का हो गया था। इतने दिनों तक उसने बड़े आनंद के साथ अपना जीवन व्यतीत किया था। अब वह उसके लिये भार हो रहा था। इसलिये उसने सिकंदर से कहा कि एक बड़ी चिता तैयार की जाय, जिसमें वह बैठकर भस्म हो जायगा। सिकंदर ने पहले तो इस प्रस्ताव का विरोध किया। पर जब देखा कि वह नहीं मानता, तब उसने एक चिता तैयार कराई। उसकी कुल सेना इस असाधारण दृश्य को देखने के लिये इकट्ठी हुई। 'कलानोस' अपने दार्शनिक-सिद्धांत के अनुसार बड़े साहस के साथ चिता पर बैठ गया और अग्नि की ज्वाला में उसने अपने शरीर को भस्म कर दिया। सिकंदर ने उसके लिये बहुत ही बहुमूल्य चिता तैयार कराई थी।'

भारत में सिकंदर द्वारा जो मुख्य घटनाएँ हुई थीं, उन सब का वर्णन हो चुका। पर हमारी समझ में यह लेख अपूर्ण रहेगा यदि उसकी प्रकृति और कामों पर एक दृष्टि न डाली जाय। इस पर ईरान के एक आधुनिक प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता 'हसन पीरनिया' ने, जिन्होंने बहुत अनुसंधान करके अपने देश का प्राचीन इतिहास 'ईरान-बास्तान' के नाम से तीन बड़ी-बड़ी जिल्दों में लिखा है, बहुत ही अच्छा सिंहावलोकन किया है। वह लिखते हैं—

सिकंदर का व्यक्तित्व और उसका कार्य

"सिकंदर के इतिहास-लेखकों ने, जिन्होंने उसका भरपेट यशोगान किया है, लिखा है कि सिकंदर बुद्धिमान्, वीर, निर्भीक, बलवान्, (जोखिम के समय) धैर्यवान्, महत्वाकांक्षी, नाम और ख्याति का बेहद भूखा था। उसके विचार इतने ऊँचे थे कि पागलपन तक पहुँचे हुए थे, तथा वह हठी, शराबी, लंपट, क्रोधी, अभिमानी, द्रोही, बदमिजाज, वधिक और निर्दयी था। स्त्री-पुरुषों को नष्ट करना, वृद्ध-बालक को

दास बनाकर बेचना, नगरों को लूटना और फूँकना इत्यादि उसका साधारण कृत्य था।

"यदि उसके कामों पर विचार किया जाय कि उसने करोड़ों आदमियों के प्राण लेकर संसार को या अपने देश को क्या लाभ पहुँचाया? उत्तर 'कुछ नहीं' मिलता है, क्योंकि उसने ईरान, हबश और भारत में हजारों आदमियों को **कहीं धोखे से और कहीं विश्वासघात से वध किया** और फिर उसकी सेना के बहुत से आदमी मारे गए अथवा प्रतिकूल जलवायु, गरमी और रोगों से पीड़ित होकर मर गए। कुछ लोगों का कहना है कि वह जल्दी मर गया, नहीं तो दुनियाँ के लिये कुछ कर जाता, पर यह निरा भ्रम है। यदि वह ५० वर्ष भी जीता रहता तो एक देश से दूसरे देश पर चढ़ाई करता फिरता और उसमे कहीं मारा जाता या मर जाता। कुछ लोग यह कहते हैं कि सोगद और भारत के कुछ लोगों ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया था, इसलिये उसने उन पर चढ़ाई की थी। पर विदेशियों से अपनी मातृ-भूमि की रक्षा करने के लिये आंदोलन करना विद्रोह नहीं है। यदि आंभी और पुरु के साथ उसने कुछ सलूक किया तो अपने लाभ के लिये और उन कठिनाइयों के दूर करने के लिये जो उस समय उसके मार्ग में कंटक बन रही थीं।" (देखिए उक्त पुस्तक के दूसरे खंड का पाँचवाँ अध्याय।)

कुछ भारत के आधुनिक इतिहास-लेखकों की धारणा है कि सिकंदर के हमले से इस देश को लाभ ही पहुँचा था। हमने इसी भ्रम के निवारण के लिये ऊपर एक विदेशी विचारशील, निष्पक्ष इतिहासकार का मत उद्धृत किया है।

भारत पर सिकंदर के हमले के विषय में सामान्य जनता बहुत कुछ अँधेरे में है। इसलिये सबसे पुरानी पुस्तकें, जो इस समय उपलब्ध हैं, उन्हीं के आधार पर हमने

उपसंहार

यह लेख तैयार किया है, जिससे यह निष्कर्ष निकलता है—

(१) इस विषय में जो पुरानी ऐतिहासिक सामग्री हमारे सामने है वह बहुत कुछ संदिग्ध और अप्रामाणिक है, जैसा कि पीछे विस्तारपूर्वक दिखलाया गया है। अत: उसपर पूर्णतया भरोसा करना बहुत बड़ी भूल होगी।

(२) फिर जो कुछ इन पुराने इतिहासकारों ने लिखा है उसमें अनेक स्थलों पर एक दूसरे से मतभेद ही नहीं, प्रत्युत कई जगह एक ने दूसरे का खंडन किया है। इसके अतिरिक्त उनकी वर्णन-शैली स्पष्टतया ऐसी पक्षपात-पूर्ण है कि उनको एक सच्चे इतिहासकार के पद से गिरा देती है। इसका भी विस्तृत वर्णन अनेक प्रमाणों से पीछे किया गया है।

(३) यदि आंभी जैसा देश-द्रोही स्वार्थवश पहले ही सिकंदर से मिल न जाता तो केवल पश्चिमोत्तर-भारत की वीर-जातियों की शक्ति इतनी प्रबल थी कि वहाँ घुसते ही सिकंदर और उसकी सेना विनष्ट हो जाती। फिर भी प्रतिकूल परिस्थिति होने पर तत्कालीन अनेक भारतीय सपूतों ने अपनी मान-मर्यादा और मातृ-भूमि की रक्षा के लिये ऐसी वीरता का परिचय दिया था कि सिकंदर के दाँत खट्टे हो गए थे और उसको स्पष्टतया कहना पड़ा था कि यह ईरान नहीं है जिसको उसने नर्म चारा समझकर बड़ी सुगमता से हड़प कर लिया था।

इतना ही नहीं, एक अवसर पर यहाँ की वीरांगनाओं ने भी रण-स्थल में बड़े जोश के साथ सिकंदर की सेना से हाथों-हाथ युद्ध किया था।

(४) वीर-शिरोमणि पुरु ने तो सिकंदर के प्रवाह को ऐसा पीछे ढकेल दिया था कि उसको अपना बोरिया-बँधना लेकर स्वदेश को भागते ही बन पड़ा था। वह जो समस्त एशिया के विजय करने का स्वप्न देख रहा था, सहसा भग्न हो गया था। पुरु के धक्के से उसके सिपाहियों का दिल इतना टूट गया था कि अब सिकंदर ने उनको और आगे पूर्व की ओर बढ़ने के लिये कहा तब उनकी सारी बहादुरी हवा

हो गई और वे ढाड़ें मार-मारकर रोने और चिल्लाने लगे। इसका उल्लेख लगभग सभी इतिहासकारों ने दबे शब्दों में किया है।

(५) भारतीयों की मनोवृत्ति सदा से ऐसी रही है कि वे शत्रुओं को धोखा-धड़ी से मारकर जीतना क्षात्रधर्म के विरुद्ध समझते थे। पर ऐसा जान पड़ता है कि पाश्चात्य जातियों का ढंग पहले ही से इसके विपरीत रहा है। सिकंदर ने कई अवसरों पर घोर विश्वास-घात और दगाबाजी से न केवल निहत्थे भारतीय पुरुषों बल्कि स्त्री-बच्चों और घायलों तक का बड़ी निर्दयता से रक्त-पात किया था। सिकंदर का यह कृत्य इतना घृणित था कि एक पुराने इतिहासकार ने भी दबे शब्दों मे इसकी निंदा की है।

(६) भारत प्राचीन काल से दार्शनिक विचारों के लिये विख्यात रहा है। सिकंदर का भी कुछ ऐसे तत्त्वज्ञानियों से समागम हुआ था और वह उनसे इतना प्रभावित हुआ था कि एक विद्वान् को अपने साथ ले गया था।

यूनानी दर्शन का, पीछे मुसलमानों पर बहुत प्रभाव पड़ा। क्योंकि उनके यहाँ दर्शन और विज्ञान का नाम न था, इसलिये जो कुछ पहले उनके सामने आया उसी को उन्होंने अपना लिया। यदि कहीं उस समय भारत का दार्शनिक-साहित्य यूनान पहुँच जाता तो अरबों तथा योरपवालों की दार्शनिक-विचार-धारा कुछ दूसरी ही ओर होती। पर ऐसा जान पड़ता है कि सिकंदर की मार-काट और नोच-खसोट के कारण इसका अवसर ही नहीं मिला कि उभय-देशों के दार्शनिक विचारों का आदान-प्रदान होता।

— —



मार्तंड-मंदिर, दुर्गा की मूर्ति



मार्तंड-मंदिर का भग्नावशेष

काश्मीर का मार्तंड-मंदिर

[लेखक—श्रीयुत ब्योहार राजेन्द्रसिंह, एम० एल० ए०]

मुझे अपनी काश्मीर-यात्रा में प्राचीन मंदिरों के भग्नावशेष देखने को मिले, जिनमें अवंतिपुर और मार्तंड मुख्य हैं। मार्तंड का मंदिर श्रीनगर से पहलगाँव के रास्ते में ३८वें मील पर, अनंत नाग से ५ मील आगे, वर्तमान मटन नामक कस्बे में है। 'मटन' भी प्राचीन मार्तंड का अपभ्रंश है। मटन के पास ही एक पहाड़ी पर यह प्राचीन मंदिर स्थित है। नीचे चाका नदी के विमल और कमल नामक कुंडों पर सूर्यक्षेत्र नामक तीर्थ है। यहाँ नवीन सूर्य-मंदिर है। प्राचीन मार्तंड-मंदिर के नष्ट हो जाने पर ही यह नवीन मंदिर निर्माण किया गया है। प्राचीन मंदिर में मुख्य मंदिर तथा तोरण द्वार का अनुपात प्राचीन हिंदू-स्थापत्य-कला के अनुसार है। मंदिर एक चौकोर आँगन के बीच में विशाल काले पत्थरों से बना हुआ है। मुख्य मंदिर के चारों ओर २२० फुट लंबा और १४२ फुट चौड़ा परकोटा है जिसमें ८४ छोटे छोटे मंदिर बने हैं। इनमें भिन्न-भिन्न देवताओं की मूर्तियाँ मंचों पर स्थित थीं। पश्चिम ओर परकोटे के मध्य में मंदिर का गोपुर-द्वार है जो कि अवंतिपुर मंदिर के समान है। यह मुख्य मंदिर के समान ही चौड़ा है और सजावट-बनावट तथा विभागों में प्रधान मंदिर ही के समान है। यह गोपुर पूर्व और पश्चिम दोनों ओर खुला है तथा एक दीवार के द्वारा भीतरी तथा बाहरी भागों में विभाजित है। इस दीवार के मध्य में एक द्वार है जिसमें लकड़ी का द्वार लगा था। गोपुर का छत्र मुख्य मंदिर ही के समान चौकोर था तथा इनकी सजावट में खड़े हुए देवताओं की मूर्तियाँ, कुछ शृंगारिक मूर्तियाँ, बैठी हुई मूर्तियाँ, फूल-पत्ती तथा हंस आदि पक्षियों के चित्र हैं। गोपुर के दोनों ओर की भीतरी दीवारों पर त्रिमुख विष्णु की मूर्तियाँ हैं जिनके आस-पास जय और विजय

खड़े हैं। गोपुर के दोनों भाग १७½ फुट ऊँचे विशाल खंभों द्वारा समर्पित हैं। इसका तर्ज भी अवंतिपुर के ही समान है।

प्रधान मंदिर पूर्व की ओर २७ फुट चौड़ा है। इसके भीतर तीन स्पष्ट अर्ध-मंडप (बाहरी भाग) हैं जो कि १८ फुट १० इंच चौक चौड़े हैं। मंदिर का अंतराल १८ फुट लंबा और ४ फुट ६ इंच चौड़ा है और गर्भ-गृह (भीतरी भाग) १८ फुट ५ इंच लंबा तथा १२ फुट १० इंच चौड़ा है। मंदिर की दीवारें ६ फुट मोटी हैं। तीन में से दो अर्ध-मंडप तो खूब सजे हैं किंतु तीसरा बिलकुल सादा है। पहले की दीवारों पर त्रिमुख अष्टभुजी वनमालाधारी विष्णु की मूर्तियाँ खुदी हुई हैं जिनका बायाँ हाथ एक चामरधारिणी पर रखा हुआ है। उत्तर दीवार पर की मूर्ति के चरणों के बीच में पृथ्वीमूर्ति है। इन तीन मुखों में से एक वाराह, दूसरा सिंह तथा बीच का मनुष्याकृति है। ये मूर्तियाँ अवंतिस्वामी मंदिर ही के समान हैं। दूसरे मंडप की दीवारों पर एक ओर मगर पर सवार गंगा की मूर्ति है जो दाएँ हाथ में कमल तथा बाएँ में जल-पात्र लिए है। आस-पास दो सखियाँ छत्र तथा चँवर लिए हैं। दूसरी ओर कच्छप पर सवार यमुना की मूर्ति है। उनके दोनों ओर भी उसी प्रकार दो सखियाँ हैं। मंदिर का भीतरी मंच, जो कि ७५ फुट का है, रणादित्य (ई० पू० २१७) का बनवाया हुआ तथा बाहरी मंच सातवीं सदी में ललितादित्य का बनवाया हुआ कहा जाता है। भीतरी मंच पर कुछ देवताओं की मूर्तियाँ खुदी हैं तथा बाहरी मंच पर बालकृष्ण की भिन्न भिन्न लीलाएँ चित्रित हैं। ये मूर्तियाँ कुल १४ हैं—१२ उत्तरी-दक्षिणी दीवारों पर तथा २ पूर्व की ओर। इनमें से एक सूर्यसारथी अरुण की जान पड़ती है जो रथ की रश्मियों को पकड़े हुए है। गंगा-यमुना की मूर्तियों के ऊपर छत्र लिए हुए दो गंधर्वों के उभरे चित्र हैं।

आँगन मे मंदिर के चारों ओर छोटे छोटे चार मंदिरों के आसन हैं जो कि ब्रह्मा, विष्णु, शंकर और दुर्गा के मंदिर बतलाए जाते हैं। मुख्य

मंदिर में मार्तंड की मूर्ति स्थापित थी। दीवारों पर खुदी हुई मूर्तियों के मुख प्रायः नष्ट हो गए हैं। केवल आकार, वाहन तथा आयुध से वे पहचानी जाती हैं। कुछ मूर्तियों के मुख पुरातत्त्व विभाग की ओर से सुधराए गए हैं। किंतु वे अलग जान पड़ते हैं। मंदिर में कुछ लोहे के पुराने कीले भी यहाँ-वहाँ दीख पड़ते हैं जिनसे जान पड़ता है कि वह कितनी मजबूती से बनाया गया था। मंदिर में कुल ८४ खंभे थे, जो कि सूर्यदेव के अंग माने जाते हैं। इनमें ७० गोल, १० चौकोर तथा ४ बीचवाले बड़े खंभे हैं। गोल खंभे ९½ फुट ऊँचे तथा २१½ फुट व्यासवाले हैं। इनमे से आधे से अधिक टूटे हुए पड़े हैं। सामने एक चौकोर हौज है जिसमें मंदिर के पीछे की नाली से झरने का पानी आकर एकत्र होता था। आँगन में मिट्टी की बड़ी-बड़ी गोल कोठियाँ गड़ी हुई मिलती हैं जिनमें अनाज इकट्ठा किया जाता था। सारा मंदिर टूटी-फूटी अवस्था में पाया जाता है। मुख्य मंदिर की एक-दो महराबें अभी ज्यों की त्यों खड़ी हैं। मंदिर का आयताकार गुंबज काश्मीर के अन्य स्थानों में पाए जानेवाले गुंबजों ही के समान है। वह ७५ फुट ऊँचा, ३३ फुट लंबा तथा इतना ही चौड़ा है। सामने के गोपुर के समान दाईं तथा बाईं ओर भी बंद द्वार के गोपुर हैं जो कि ६० फुट ऊँचे हैं तथा मेहराबों पर स्थित हैं। मंदिर का घेरा काश्मीर भर में सबसे विशाल है।

सुल्तान सिकंदर बुतशिकन (१३९०–१४१७ ई०) ने इस मंदिर को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। कहते हैं, उसने मंदिर के भीतर लकड़ी और बारूद भरवाकर आग लगवा दी जिससे पुजारियों के साथ यह मंदिर जल गया। जलने के निशान अभी तक दीवारों पर स्पष्ट दीखते हैं। यह भी बतलाया जाता है कि मंदिर के गुंबज पर महालक्ष्मी की एक सुवर्ण-मूर्ति थी। इसके मस्तक पर एक बड़ा हीरा था जिसका प्रकाश कई मील तक जाता था और रात को भी सूर्य के समान प्रकाश देता था। इसी से आकृष्ट होकर सिंकदर ने मंदिर की दुर्दशा कर डाली।

मंदिर के पीछे एक पत्थर पर अभी तक आठ लकीरों का एक शिलालेख पाया जाता है, जो संस्कृत-भाषा तथा शारदा लिपि में है। इसके बहुत से अक्षर मिट गए है। जो कुछ पढ़ा जा सकता है वह इस प्रकार है :—

१—..............हत: यश्चार्य...... ....

२—... . पद्योद्भहेतुत: स्वाम्नाभिपद्मोद्भवाद्ब्रह्मप्राप्तिकृतोप.........

३—.....व्याप्युग्रधामोत्करश्लाघ्य: कर्त्तुरपि प्रजां प्रतिदिनकुर्वन्निबाशा-भवाभूवि।

४—.....वादव्याप्तजगत्त्रयाश्रमादय: कुर्वन्नसदैवोदयम्। चक्राक्रान्ति-समुज्वल: परिप............

५—... ..जो मुरारेरपि ॥ क्रान्तानन्तदिगम्बरात्करपरिव्याप्तत्रिलोकी-तलाद्गोभि—

६—......मतानि ज्ञानशशभृत्खण्डस्य धामप्रभुश्रम्यिन्नृत्तविधायिनो-ऽपि जगतो यशङ्कर—

७—......प श्रियोऽस्य श्यसोपेन्द्राब्जनानां प्रसभमपहृताशेषरक्षाश्रमस्य श्रीमा............

८—.....श्रीमृताण्डस्य बिम्बं श्रीश्रीवर्मासपर्याहित.................

इसका भावार्थ इस प्रकार जान पड़ता है :—

"कीर्त्तिमान् श्रीवर्मन् ने, जो कि अपने यशकारी कृत्यों के द्वारा त्रिमूर्त्ति से भी बढ़ गए थे और जिन्होंने उनको जगत्पालन के श्रम से मुक्त कर दिया था, प्रबल भक्ति से प्रेरित होकर अपने राज्य के ७०वें वर्ष में मार्तंड की मूर्त्ति स्थापित कराई ॥"

मुक्तापीड़ ललितादित्य, जो कि राज्य-विस्तार, विदेशों की दिग्विजय तथा निर्माण-कार्य में काश्मीर में शायद सब से प्रतापी राजा था उसके द्वारा भी मार्त्तंड-मंदिर के निर्माण का उल्लेख है। कल्हण के अनुसार इसका समय सन् ६९९ से ७३६ ई० तक है किंतु इसकी निश्चित तिथि का ठीक ठीक निर्णय नहीं हो सका है। (राजतरंगिणी एम० ए० स्टीन, प्रथम भाग, उपोद्घात पृ० ८८-८९)

स्टीन साहब ने मार्तंड-मंदिर का वर्णन इस प्रकार किया है :—

"ललितादित्य के निर्माण किए हुए भवनों और नगरों के स्थानों का निश्चित रूप से पता लगाना कठिन है। किंतु विस्तृत भग्नावशेषों के कारण जिनका पता लगता है उनसे ललितादित्य की कीर्ति एक निर्माता के नाते दृढ़ होती है। आश्चर्यजनक मार्तंड-मंदिर का भग्नावशेष, जो कि उसने मार्तंड तीर्थ पर बनवाया था, अभी तक इस घाटी में हिन्दू-स्थापत्य-कला का एक मार्के का नमूना है। गिरी हुई अवस्था में भी वह अपनी विशालता तथा कलात्मक आकृति और सजावट के कारण प्रशंसनीय है।" (पृ० ९२)

कल्हण ने मुक्तापीड़ के द्वारा मार्तंड-मंदिर के निर्माण का वर्णन इस प्रकार किया है :—

सोखंडाश्मप्राकारं प्रासादान्तर्व्यधत्त च।

मार्त्तण्डस्याद्भुतं दाता द्राक्षास्फीतं च पत्तनम् ॥

कल्हण ने 'राजतरंगिणी' में ललितादित्य मुक्तापीड़ के विषय में लिखा है—"इस दानी राजा ने एक नगर बनवाया जिसमें अंगूर की बेलों की प्रचुरता थी और घेरे की प्राचीर के भीतर विशाल पत्थरों की दीवारों से युक्त मार्तंड का आश्चर्यजनक मंदिर बनवाया था।" (राजतरं० ४।१९३)

राजतरंगिणी में इस प्रतापी राजा द्वारा निर्मित ज्येष्ठरुद्र (वर्तमान ज्येष्ठेश्वर या शंकराचार्य मठ), मुक्तेश्वर या मुक्तस्वामिन्, गोवर्धनधर, राजविहार, परिहारकेश्वर आदि विष्णु, कृष्ण, बुद्ध और इन्द्र के मंदिरों का उल्लेख भी मिलता है। (रा०, त० ४ श्लो० १८८, १९०, १९८, २०० और २०२) इससे प्रकट होता है कि यह राजा बड़ा प्रतापी तथा बड़ा भारी निर्माता था।

शिलालेख में उल्लिखित श्रीवर्मन् प्रसिद्ध राजा अवन्तिवर्मन् (८५५ से ८८३ ई०) माना गया है जिसने अवन्तिस्वामिन् का मंदिर बनवाया था, किंतु राजतरंगिणी में इसके द्वारा सूर्यमूर्ति की स्थापना का उल्लेख कहीं नहीं पाया जाता।

राजतरंगिणी में यह भी उल्लेख है कि गोनंद वंशोद्भव रणादित्य भी बड़ा भारी निर्माता था। उसने रणेश्वर, रणारंभदेव तथा रणपूर स्वामी के मंदिर बनवाए थे। अंतिम मदिर के संबंध में लिखा है कि यह मंदिर सूर्यदेव का था और 'सिंहारोत्सिका' नामक ग्राम में स्थित था। (राजतरंगिणी, त० ३ श्लो० ४६२ तथा Monuments of Kashmir by R. C. Kak)

कुछ विद्वान् रणादित्य को ऐतिहासिक नृपति न मानकर प्रागैतिहासिक राजा मानते हैं। इसके प्रमाण में वे यह तर्क पेश करते हैं कि राजतरंगिणी के चतुर्थ तरंग तक कल्हण ने राजाओं की तिथियाँ निश्चित रूप से नहीं दीं, केवल उनके राज्यकाल का उल्लेख किया है। रणादित्य भी उन्हीं में से एक है। इनके संबंध में एक संदेहजनक बात यह भी है कि उनका राज्यकाल ३०० वर्ष बतलाया गया है जो कि असंभव जान पड़ता है। एक ओर विलसन आदि लेखकों ने इसे विश्वसनीय माना है दूसरी ओर राजतरंगिणी के विश्वसनीय प्रमाण स्टीन साहब ने इस पर आश्चर्य प्रकट किया है। किंतु उन्होंने भी रणादित्य के बनवाए मंदिरों आदि को अनैतिहासिक नहीं माना। (M. A. Stein's Rajatarangini Vol I. Introduction Ch. V pp. 86)

दूसरे विद्वानों ने भी रणादित्य को ऐतिहासिक नृपति माना है, यद्यपि उसके राज्यकाल के संबंध में अतिशयोक्ति हो सकती है। उसके निर्माण किए हुए अनेक मंदिरों, विहारों तथा नगरों का उल्लेख स्पष्ट रूप से राजतरंगिणी में होने के कारण उसका अस्तित्व नहीं उड़ा दिया जा सकता। [श्री रणजीत शंकर पंडित-कृत राजतरंगिणी परिशिष्ट (अ) पृ० ५९१]

अत: सब से पहले रणादित्य ने रणपूर स्वामी नामक सूर्यमंदिर बनवाया जिसका प्रमाण मंदिर के पहले चबूतरे से पाया जाता है। इसके बाद ललितादित्य मुक्तापीड़ ने इसका जीर्णोद्धार कर दूसरा चबूतरा तथा मंदिर बनवाया और अंत में श्रीवर्मन ने फिर से सूर्यमूर्त्ति की स्थापना की। ५०० वर्ष तक मंदिर अक्षुण्ण रहा किंतु बाद में सिकंदर बुत-

सिकन ने इसकी वह दशा कर डाली जिसमें वह आज तक पड़ा हुआ है। बस, यही इस प्राचीन मंदिर का संक्षिप्त इतिहास है।

जब बौद्धधर्म के ह्रास के बाद काश्मीर में पौराणिक ब्राह्मण धर्म की स्थापना हुई, श्रीशंकराचार्यजी ने यहाँ अपना मठ स्थापित किया। शिवोपासना ने बुद्धोपासना का स्थान ले लिया और ज्येष्ठरुद्र आदि शिवमंदिरों की स्थापना हुई। इसके साथ ही शैव-वैष्णव-विवाद को मिटा-कर स्मार्तसिद्धांत के रूप में हिंदूधर्म की सामंजस्य-भावना उदित हुई। जिस ललितादित्य ने शिव-मंदिर बनवाए उसी ने बौद्ध-विहार तथा वैष्णव-मंदिरों का भी निर्माण कराया। इसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। हिंदुओं में पंचायतन की प्रथा प्रारंभ हुई और ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की त्रिमूर्त्तियों का एकीकरण होने के साथ सूर्य, दुर्गा या गणेश की उपासना भी साथ ही साथ चली। दुर्गा और गणेश शिवो-पासना ही के अंग हैं। सूर्य ही एक देवता हैं जो त्रिमूर्त्ति से अलग जान पड़ते हैं। किंतु यथार्थ में सूर्य त्रिमूर्त्ति की एकता ही के प्रतीक हैं। 'आदित्यहृदय' में "ब्रह्माविष्णुरुद्रस्वरूपिणे" मार्त्तंड ही की उपा-सना की गई है। अत: इसी त्रिमूर्त्ति की एकरूपता के रूप में सूर्योपासना प्रचलित हुई जान पड़ती है। मार्त्तंड-मंदिर के चारों कोनों पर ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा दुर्गा के मंदिर होना तथा बीच में मार्त्तंड मूर्त्ति का स्थित होना इसी तत्त्व को सिद्ध करता है कि प्रचंड मार्त्तंड के रूप से केंद्रबिंदु में सर्वदेवस्वरूपी अखंड ईश्वर वर्त्तमान है जिसकी भिन्न भिन्न किरणें ही त्रिदेवों या अनंत देवी-देवताओं के रूप में चारों दिशाओं में फैली हुई हैं। सूर्योपासना का मार्त्तंड-मंदिर हिंदूधर्म की व्यापकता तथा सामंजस्य-विधान का एक प्रबल प्रमाण है।

काश्मीर की शीतप्रधानता भी यहाँ सूर्योपासना की प्रमुखता का एक कारण हो सकता है। ईरानी, एजटिक तथा इंक आदि जातियों की सूर्योपासना का भी यही भौगोलिक कारण हो सकता है। भारत के वैदिक आर्य भी सूर्योपासक थे जिसके प्रबल प्रमाण उनके गायत्री आदि मंत्र हैं। उड़ीसा का कोणार्क मंदिर, जो कि १३वीं सदी में बना था,

इसी सूर्योपासना का अवशिष्ट प्रमाण है। काश्मीर में भी भिन्न-भिन्न समयों में जयस्वामिन् तथा मार्त्तंड-मंदिरों के निर्माण से भारत का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

भारत के साथ ही ईरान का प्रभाव भी काश्मीर में सूर्योपासना का कारण हो सकता है। बौद्ध-धर्म की प्रबलता के समय इस देश का मध्य एशिया से घनिष्ठ आदान-प्रदान का संबंध स्पष्ट ही है। किंतु इससे अधिक भारत के सामंजस्यमूलक आर्यधर्म ही का प्रभाव स्पष्ट जान पड़ता है जिसने वैष्णवों के विष्णु, शैवों के शिव, शाक्तों की दुर्गा, गाणपत्यों के गणेश, बौद्धों के बुद्धदेव तथा सूर्योपासकों के सूर्य को एक ही सूत्र में पिरोकर एक सुंदर सामंजस्य की माला विश्व को अर्पित की है।

एक प्राचीन हिंदी समाचार-पत्र

[लेखक—श्री कालिदास मुकर्जी, बी० ए०, एम० आर० ए० एस० लंदन]

हिंदी समाचार-पत्र सबसे पहले कब निकला, इसका पता लगाना कठिन है। पं० रामचंद्र शुक्ल ने, अपने हिंदी-साहित्य के इतिहास में, लिखा है—"संवत् १९०२ में यद्यपि राजा शिवप्रसाद शिक्षा-विभाग में नहीं आए थे पर विद्या-व्यसनी होने के कारण अपनी भाषा हिंदी की ओर उनका ध्यान था। अत: इधर-उधर दूसरी भाषाओं में समाचार-पत्र निकलते देख उन्होंने उक्त संवत् में उद्योग करके काशी से 'बनारस अखबार' निकलवाया" ।—(पृष्ठ ४१०) इस कथन का सार, मेरी समझ में तो यह होता है कि दूसरी भाषाओं में संवत् १९०२ के पूर्व समाचार-पत्र थे पर हिंदी में एक भी नहीं था। परंतु प्राचीन पुस्तकों की खोज में मुझे संवत् १८८३ (सन् १८२६) का "उदंत-मार्त्तंड" नामक समाचार-पत्र देखने को मिला है, एवं वह भी एक ही प्रति नहीं क्रमश: ७६ अंक एक पुस्तकाकार में संकलित किए हुए मिले हैं। आलोच्य समाचार-पत्र के अति प्राचीन होने के कारण कीड़ों ने उस पर अपनी असीम कृपा प्रदर्शित कर उसे बहुत कुछ नष्ट कर दिया है। तिस पर भी आधुनिक अवस्था में आलोच्य पत्रिका विशेष उपयोगी है। नीचे उसका परिचय दिया जाता है।

यह पत्रिका कलकत्ता से निकलती थी। पत्रिका के हर एक अंक के अंत में यह लिखा हुआ है, "यह उदंत-मार्त्तंड कलकत्ते के कोल्हू-टोला के अमड़ा-तला की गली के ३७ अंक की हवेली के मार्त्तंड छापा में हर सतवारे मंगलवार को छापा होता है जिनको लेने का काम पड़े वे उस छापा-घर में अपना नाम भेजने ही से उनके समीप भेजा जायगा उसका मोल महीने में दो रुपया। जिन्होंने सही की है जो

उनके पास कागज न पहुँचे तो इस छापेखाने में कहला भेजने ही से तुरंत उनके यहाँ भेजा जायगा।" १५ अंक तक यह इसी प्रकार लिखा हुआ मिलता है, उसके बाद १६वें अंक से मासिक मूल्य "दो रुपया" न लिखकर "अंक दर आठ आना" लिखा हुआ मिलता है। इसके बाद जब हम आलोच्य पत्रिका के संपादक की ओर ध्यान देते हैं तब किसी भी अंक में उनका उल्लेख नहीं मिलता। ४६वें अंक में एक नोट पाया जाता है जिससे आलोच्य-पत्रिका के संपादक श्री युगलकिशोर शुक्ल ठहरते हैं। वह नोट यह है—

To

Juggul Kissore Sookool,
Editor and Proprietor of the
Nagree News Paper called
the Odunta Martunda.

I have been instructed by my client Baboo Bhowany Churn Bannerjee to institute proceedings against you in the Supreme Court of Judicature for the libellous matter contained in your paper the Odunta Martunda of the 27th March last affecting the character and reputation of my client.

I request you will inform me of the name of your Attorney that I may communicate with him accordingly.

Calcutta
5th April 1827

Yours obediently,
R. W. Poe,
Attorney-at-Law

आलोच्य पत्रिका की लेखन-प्रणाली आधुनिक है। पृष्ठ के ऊपर काफी बड़े बड़े अक्षरों में "उदंत-मार्तंड" लिखा हुआ है एवं हर एक अक्षर प्रायः २ इंच है। उसके नीचे मामूली अक्षरों में "अर्थात्" लिखा हुआ है। फिर उसके नीचे, संस्कृत में, "दिवाकांतकांतिं

विनध्वान्तमन्तं नचाप्नोति तद्वज्जगत्यत्रलोक: समाचारसेवामृते ज्ञत्वमाप्तुं न शक्नोति तस्मात्करोमीति यत्न'' लिखा हुआ मिलता है; परंतु ३१वें अंक के बाद इस संस्कृत-वाक्य के नीचे यह पद्य लिखा हुआ मिलता है—

"दिनकर कर प्रगटत दिनहि यह प्रकाश अठ याम।
औसो रवि अब उग्यो महि जिहि तेहि सुख को धाम॥
दृगकमलनि विकसित करत बढ़त चाव चित बाम।
लेत नाम या पत्र को होत हर्ष अरु काम"॥

—इसके बाद दो आड़ी लकीरों के बीच पत्रिका का अंक, वार एवं मूल्य लिखा हुआ है; फिर इनके बाद हर एक पृष्ठ दो कालमों में विभाजित किया हुआ है।

जो आलोच्य पुस्तकाकार पत्रिका देखने को मिली है उसके पृष्ठों की लंबाई १ फुट एवं चौड़ाई ८ इंच है। प्रथम पत्रिका का अंक नंबर ४ है एवं अंतिम का ७९। अतएव इसके पूर्व भी ३ अंक और निकल चुके थे जो देखने को नहीं मिले। ७९वें अंक के अंत में एक नोट मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि इस पत्र का उसी अंक में अंत हो गया—फिर आगे नहीं चला। वह नोट इस प्रकार है—

"उदंत-मार्त्तंड की यात्रा

मिती पौष बदी १ भौम संवत् १८८४ तारीख। डिसेंबर सन् १८२७॥

आज दिवस लौं उगचुक्यौ मार्त्तंड उदंत।
अस्ताचल कौ जात है दिन कर दिन अब अंत॥"

(इसके नीचे चार चरण और हैं जो नहीं पढ़े जा सके; उन्हें कीड़ों ने बुरी तरह से काटा है) फिर उसके नीचे—

"अब ते या कलकत्ता नगरी मे उदंत-मार्त्तंड को प्रकाश भयौ तब ते लै आज दिवस लौं काहू प्रकार ते ढाढ़स बाँध विद्या के बीज बैबे कौं हिंदुस्तानियन के जड़ता के खेत को बहुविध जोत्यौ पहिले तौ औसी कठोर भूमि काहे कौ जुतै ताहू पै कोया कष्ट कर जैसो तैसो हर चलाय वा खेत्र में गाँठ कौ ब्यु बखेर बड़े यतन मे सींच फल लुन्यौ चाह्यौ

वा समय लोभ रूपी टाड़ी परि वा खेत के फल फूल पाती सिगरी चरि गई' अब जो फिरि फिरि या नशे छेत्र को गोड़िये तो श्रम ही के फल फलेगो।

यहाँ मुरख को मान ज्ञान-चर्चा को बूझै।
हँसी तु अपनी रोक जगत अँधियारो ही सूझै॥
जड़ता जर नशि चल्यौ गात को होयगो पतझर।
काको है प्रतीत बहुरि चलिहै सुख बैहर॥

"प्रथमहि या काज को जा कारण कर्यौ ताको विस्तार सभनि को जनावनो उचित है तातें अब कछु मध्यदेशीय भाषा लिखतु हौं

"मध्यदेशीय भाषा

इस उदंत मार्त्तंड के नाँव पड़ने के पहिले पछाँहियों के चित को इस कागज के होने से हमारे मनोर्थ सफल होने का बड़ा उतुसा था इसलिये लोग हमारे बिन कहे भी इस कागज की सही की बही पर सही करते गए पै हमें पूछिए तो इनकी मायावी दया से सरकार अँगरेज कंपनी महाप्रतापी की कृपा-कटाक्ष जैसे औरों पर पड़ी वैसे पड़ जाने की बड़ी आशा थी और मैंने इस विषय मे उपाय यथोचित किया पै करम की रेख कौन मेटै तिस पर भी सही की बही देख जी सुखी होता रहा अंत को नटों के से आम दिखाई दिए इस हेत स्वारथ अकारथ जान निरे परमारथ को मान कहाँ तक बनजिए इसलिये अब अपने व्यवसाई भाइयों से मन की बात बताय बिदा होते हैं। हमारे कहे सुने का कुछ मन में लाइयो जो दैव और भूधर मेरी अंतर व्यथा औ इस पत्र के गुण को विचार सुध करैंगे तो नेरे ही हैं। शुभमिति॥

लै भाइन ते पान मान ते गृह अपने बस। (दूसरी पंक्ति को, पत्रिका के साथ ही, कीड़ों ने लोप कर दिया)।"

इससे यह विदित होता है कि सरकार से यथोचित आर्थिक सहायता न मिलने से इस पत्रिका को शीघ्र ही लुप्त होना पड़ा। तिस पर भी ४थे अंक से ७६ अंक तक एवं उसके पूर्व के तीन सप्ताह

योग करने से यह साप्ताहिक पत्रिका ३१ मई सन् १८२६ से दिसम्बर सन् १८२७ तक चलती रही। (४थे अंक की तारीख आषाढ़ बदी १ संवत् १८८३। २० जून १८२६ साल भौम है।)

इस लेख का शीर्षक मैंने "एक प्राचीन हिंदी समाचार-पत्र" रखा है, लेकिन यदि उसके बदले "प्रथम हिंदी समाचार-पत्र" रखा जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी। कारण आलोच्य पत्रिका में एक स्थान पर लिखा है, "यह उदंत-मार्त्तंड अब पहिले पहल हिंदुस्तानियों के हित के हेत जो आज तक किसी ने नहीं चलाया पर अँगरेजी ओ पारसी ओ बंगले में जो समाचार का कागज छपता है उसका सुख उन बोलियों के जान्ने ओ पढ़नेवालों को ही होता है। इससे सत्य समाचार हिंदुस्तानी लोग देखकर आप पढ़ ओ समझ लेंय ओ पराई अपेक्षा न करें ओ अपने भाषे की उपज न छोड़ें, इसलिये बड़े दयावान करुणा ओ गुणनि के निधान सबके कल्यान के विषय श्रीमान् गवरनर जेनेरेल बहादुर की आयस से अैसे साहस में चित्त लगाय के एक प्रकार से यह नया ठाट ठाटा जो कोई प्रशस्त लोग इस खबर के कागज के लेने की इच्छा करें तो अमड़ा-तला की गली ३७ अंक मार्त्तंड-छापाघर में अपना नाम ओ ठिकाना भेजने ही से सतवारे के सतवारे यहाँ के रहनेवाले घर बैठे ओ बाहिर के रहनेवाले डाक पर कागज पाया करेंगे. इसका मोल महीने में दो रूपया औ डाक का महसूल लिया जायगा और यहाँ से बाहिर रहते हैं उनको यहाँ रुपये की मनौती कर देनी होयगी काहे से कि महीने महीने के अंतर रुपये भर पावने की रसीद भेजने में किसी जगह डेढ़ ओ कहीं एक रुपया डाक का महसूल लगेगा ओ कोई कारण पाय करके उसी मध्ये फिर लिखना पड़े तो फिर उतना खरच बैठेगा। इसमें दो रुपये के पटने में दो तीन रुपया मासुल का देना लगेगा इससे यहाँ की मनौती रहने से इतना खरच ओ अबेर ओ कलेश न होयगा। हिंदुस्तानियों के बीच में छापा करावने के लायक काम काज व्यवहार ओ नया कागज ओ नई कोठी यहाँ होय अथवा कुछ माल चोरी हो जाय अथवा कोई बात जो सभों को जनाया

चाहिये ओ उस बात के काम पड़े पर मन्‌जिल पहुँचाय सकें ऐसी ऐसी सच सच खबरें मार्त्तंड छापा में भेजाकर उनके हेत निखरचे छापा हो जायगा" ।

आलोच्य पत्रिका में सब प्रकार के समाचार मिलते हैं— बाजार-दर, हिंदुस्तान की एवं विलायती खबरों के साथ साथ नए नए सरकारी कानून एवं गवरनर-जनरल के विचरण एवं स्थान-परिवर्तन सब समाचार पाए जाते हैं। इसके अलावा विज्ञापन भी कम नहीं मिलता। नीचे कुछ समाचार दिए जाते हैं जिससे आलोच्य पत्रिका की भाषा का भी ध्यान हो जायगा—

(१) जैसा करम तैसा फल ॥

सुभ में आया कि इन दिनों में टकसाल के किसी के चाकर ने जो उस टकसाल में बहुत दिनों से पलता था एक दिन सोना चुराया सो वहाँ के किसी के हाथों से पकड़ा गया ओ तुर्त पुलिस में भेजा गया फिर तजवीज भए पर अपने किए का फल पचीस बेंत पाया।

(२) काम में साहबों की भरती

बैपार दफतर से। १७ अगष्ट सन १८२६

मेसूटर जे० डबूलिऊ पेकूसटन साहिब Mr. J. W. Paxton, बानात गुदाम के भंडारी हुए।

सैन्य दफ़तर से

मेजर बलियम फिंडाल साहिब Major William Fendall गवरनर जेनूरेल के यहाँ फौज के सेक्रेटर हुए॥

दीवानी निजामत दफतर से

मेसूटर डि० मेकूफरलन साहिब Mr. D. Macfarlan बाकरगंज के जज ओ मेजिसूटरट हुए। मे० एफ० ओ० ओएलूस साहिब Mr. F. O. Wells दिल्ली के दीवानी कमिश्नर के सेक्रेटर हुए॥ मेसूटर जि० जे० टेलर साहिब Mr. G. J. Taylor मकूसुदाबाद की दीवानी अदालत के रेजिटर हुए। मेसूटर डबलिउ बि० जेकूसन Mr. W B. Jackson बरेली की दीवानी अदालत के दूसरे रेजिसूटर हुए।

(३) भरतपुर की खबर ।

रानी ने चूरामन फौजदार से कहा कि अगले दिनों से यहाँ की थाती चमारों के अधीन थी सो हुकुम हुआ कि मोचा चमार को इसका पता जाना हुआ है उससे पूछा चाहिए। यह चमार पिछली लड़ाई ही में खप गया पर फौजदार ने कहा कि ऐसे और भी मिलेंगे कि जिससे इसका पता मिले ॥

(४) सदर दीवानी श्रो निजामत अदालत ॥

२५ सिप्टंबर सोमवार को यह अदालत चैारंगी से एलेकजेंडर साहिब कंपनी के दफतरखाने के पूरब जाजेफ आढ़ साहिब के घर में उठ आई छ महीने के लिये श्रो जहाँ अदालत थी वह हवेली इस साल मरम्मत होगी ॥

(५) घड़ी श्रो घंटे ॥

फरासीस की राजधानी में आगे से पेरिस नगर का नाम है कि वहाँ घड़ी बनती है अब परसाल के लेखे से समझ पड़ा कि उस नगर में ५२० आदमी घड़ी के कारीगर हैं और उनके साथ २०५६ सहायक हैं ए लोग हर साल ८०००० सोने की घड़ी श्रो ४०००० रुपये की घड़ी श्रो १५०० घंटे बनाया करते हैं इसका मोल सब सुद्धा १०००००० रुपया खड़ा होता है ।

(६) श्री श्री तुलसीदास गोस्वामी कृत सातो कांड रामायण ।

चित्त को बड़ा आनंद होता है कि बजार की तेजी रामउपासकों का रामायण पढ़ना छुड़ाया चाहती थी सो रामचंद्र की कृपा से बाबूराम पंडित के छापे की पोथी से भी उत्तम बड़े श्रो सुंदर अक्षरों में सातो कांड रामायण मार्त्तंड छापेखाने में छापी जायगी काहे से कि पहिले श्रीरामलीला छापे के कल में चढ़े कि छपवानेहारे को कल होय श्रो बाँचनेहारों का कल कल मिटे और बहुतेरों की यही इच्छा थी कि यही रामायण पहिले छापी जाय।" इस पोथी के लेने में जिसको आनंद उपजे वे सही करने की बही पर सही कर देवें पोथी छप चुकने से पहिले सही करनेवालों को दी जायगी और बस अनमोल पदार्थ

की निछावर १२) बारह रुपए कलदार लगेंगे जो आगे पर पोथी सस्ती मिलने के भरोसे सही न करेंगे वे पछतायगे ओ बारह का बारह दूना दे जायंगे तब पोथी की झाँकी पावेंगे ॥

(७) अँगरेजों का इस प्रदेश में धर्म संस्थापन वृत्तांत का शेष,

१७३७ साल की ११ व १२ आक्टोबर में इस ओर एक बड़ी तूफान हुई थी और उस समय बड़ा भूचाल होने में गंगातट के बहुत से घर द्वार भी ढह पड़े थे उसी में हुगली के पास के घोल घाट के गाँव में दो सौ घर एकी बेर मिट्टी मे मिल गए और अँगरेजी गिरजा भी उसी भूचाल में गिर तो न पड़ा मिट्टी में बैठ गया और उस समय के लोगों ने लेखा किया था कि इसमें समझ पड़ा कि जहाज ओ सुलुप ओ नाव ओ डूँगे बीस हजार से कम न होंगे ए कहाँ गए उसका कुछ ठिकाना उस समय में लोगों को नहीं मिल सका उन दिनों नौ जहाज अँगरेजी सौदागरी के गंगा में खड़े थे वे भी इस आपत्काल में आठ आदमी खलासियों को लेके डूब गए और साठ टन के बोझाई का एक जहाज यहाँ से डेढ़ कोस के अंतर पर सूखे मे पड़ा था और तीन वलंदेजी जहाज लदे लदाए वह डूब गए थे और ऊँचे ऊँचे वृक्ष खड़े गिर पड़े और सुन्ने में आता है कि इस आपत्काल में तीन लाख प्राणी का संहार हुआ था और गंगा का जल भी २६ हाथ बढ़ा था इस उपरांत १७५७ साल के जून महीने में कर्णेल क्लाईव साहिब ने पलासी की लड़ाई मार के कलकत्ते के इसी नए किले की प्राचीन फोर्ट उइलेम के नाम की नें पर नें डाली और नाम इसका वही रहा ॥

(८) चीन के समाचार ॥

चीन के समाचार से जान पड़ा कि उधर पटने की अफीम कुछ ही न बिकी चीनियों की जँचाई में वह माल लेहाड़ा ठहरा पर बनारसी अफीम अच्छे बढ़भाव बिकी ॥

(९) अनाज की अर्घवती ॥

चावल पटने का दर २॥≈ ३ गेहूँ दूधिया १॥ २। चना पटनई १॥ २≈ चना चुने २। अरहर की दाल अच्छी २॥

२॥= घी गावा २१ २२ गावा घी दोम १५ १६ घी भैंसा घोखा १७ १७॥

सोने का बाजार

पुतलि ५=)

सोना टकसाल सही भरी द. १५॥≡)

आलोच्य समाचार-पत्र का कुछ दृष्टांत ऊपर दिया गया है। इसके अतिरिक्त "अँगरेजी विलायत की बड़ी सभा", "रंगून की खबर", "जहाज की चोरी", "गवरनर-जेनरेल बहादुर की खबर" आदि बहुत से समाचार छपते थे। उपर्युक्त उदाहरणों से, आशा है, उस समय की भाषा एवं लेख-शैली पर भी हम कुछ कह सकते हैं। "भैसा", "तुर्त", "मनोर्थ", "सुआ" इत्यादि का प्रयोग था एवं उसमें ब्रजभाषा की भी कुछ छाप पड़ी हुई थी एवं बँगला की भी कुछ छाप दिखाई पड़ती है; यथा, "इसका मोल **सब सुद्धा**" आदि। लेखन-शैली पर जब ध्यान देते हैं तब अरबी-फारसी के शब्द बहुत कम दिखते हैं, विरामादि चिह्नों का कहीं भी पता नहीं चलता, वाक्य बहुत बड़े बड़े हैं, एवं स्थान स्थान पर रोमन-प्रथानुसार फुलस्टाप (Full stop) का चिह्न (.) मिलता है। "जिससे" के स्थान पर "जिस्से" मिलता है।

इन सब त्रुटियों के रहते हुए भी आलोच्य पत्रिका को अपने ढंग की प्रथम एवं निराली कहकर बहुत कुछ सांत्वना होती है। लेकिन दुःख के साथ कहना पड़ता है कि अपनी प्रारंभिक अवस्था में ही इस पत्र को काल के गाल में समाना पड़ा। यदि यह कुछ दिन और चलती होती तो इसका मूल्य और भी अधिक होता। अंत में इतना कहकर इस लेख को समाप्त करना है कि सन् १८२६ ई० में हिंदी-समाचार-पत्र का अभ्युदय हुआ। इसके पहले यदि कोई था भी तो उसका पता आज तक नहीं चला है।

चयन

अफगानिस्तान की प्राचीन संस्कृति

"गुमरख जाते वक्त हमने एकादमी-अफगान का साइनबोर्ड देख लिया था। इसलिये सोच लिया था कि इससे बढ़कर अधिक सहायक हमारे लिये कोई नहीं हो सकता। एकेडेमी में गए। वहाँ एकेडेमी के कुछ मेंबरों से मुलाकात हुई जिनमें श्री याकूबहसनखाँ से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। उनसे अफगान की संस्कृति, इतिहास और भाषातत्त्व पर कुछ सरसरी तौर पर बातचीत हुई, जिससे पता लग गया कि काबुल भी घर-सा बननेवाला है। जब एकेडेमी के डाइरेक्टर शाहजादा अहमदअलीखाँ दुर्रानी को पता लगा, तो उन्होंने बड़े आग्रह के साथ बुलाया। घंटों बातें होती रहीं; और उस वक्त तक हमें यह नहीं मालूम हो सका कि जिस व्यक्ति से हम बात कर रहे हैं, वह राजवंश से ताल्लुक रखता है। शाहजादा अहमदअली को अपने देश और जाति का बहुत अभिमान है। वे चाहते हैं कि मजहब के कारण अफगानी संस्कृति, उसके इतिहास, उसकी भाषा को जो पीछे ढकेल दिया गया था, उसका प्रतीकार किया जाय; और हर एक पठान के दिल में बामियान, हड्डा, बेगराम से प्राप्त अपने पूर्वजों की उत्कृष्ट कला का अभिमान हो। उसको मालूम होना चाहिए कि आर्यों की सबसे पुरानी पुस्तक ऋग्वेद का बहुत सा प्राचीन और महत्त्वपूर्ण भाग पठानों की भूमि में पठान-दिमाग द्वारा बनाया गया है। पठान कौम ने ही पाणिनि जैसे सर्वोच्च व्याकरणकार को पैदा किया। पठान माताओं ने असंग और वसुबंधु जैसे महान् दार्शनिक पैदा किए, जिनके गंभीर विचारों की छाप भारत के ही सभी दर्शनों में नहीं मिलती और जिनका अनुयायी बनने के लिये चीन और जापान के विचारक ही प्रतियोगिता नहीं करते; बल्कि असंग के योगाचार दर्शन से उत्प्राणित

होकर इसलाम का सूफीमत और ब्राह्मणों का वेदांत बना। अफगान-एकादमी का डाइरेक्टर होने के लिये जैसे दिल और दिमाग की जरूरत है, शाहजादा अहमदअली उसके योग्य हैं। उसके बाद भी मुझे उनसे दो-तीन बार मिलने का मौका मिला; और सांस्कृतिक जिज्ञासा तथा तत्संबंधी खोज के विषय में उनके प्रश्नोत्तर का खात्मा ही न होता था। एकादमी के दूसरे मेंबर सैयद कासिम रस्तिया, जनाब अहमदअली कुहजाद, आदि भी वैसे ही उत्साही स्कालर हैं। एकेडेमी पश्तो-साहित्य के निर्माण और प्रचार की कोशिश कर रही है। पश्तो भाषा की पाठावली बन रही है; और पश्तो व्याकरण को पूरा करने के लिये जबर्दस्त कोशिश हो रही है। इसी संबंध में एकेडेमी 'जेरी' नामक एक पर्चा अपनी ओर से निकालती है। एकेडेमी की कोशिश है कि जहाँ तक हो सके, फारसी अरबी शब्दों की जगह पर पश्तो शब्दों को ही इस्तेमाल किया जाय। हमको यह मालूम है कि पश्तो जाति और भाषा का संस्कृत से मादरी ताल्लुक है। यद्यपि एकेडेमी में संस्कृत जाननेवाला कोई विद्वान् नहीं है, इसलिये वहाँ के पंडितों को अँगरेजी और फ्रांसीसी किताबों से ही मदद लेकर कुछ करना पड़ता है; लेकिन उनकी बड़ी इच्छा है कि उनके कार्य-कर्त्ताओं में कोई संस्कृतज्ञ भी हो। मैंने कहा कि आप किसी होनहार नौजवान को संस्कृत पढ़ने के लिये बनारस भेजें।

श्री याकूबहसनखाँ अफगानिस्तान की हिंदू-आर्य-भाषाओं की खोज के संबंध मे बड़ा काम कर रहे हैं। उन्होंने काबुल से निकलने-वाले 'सालनामा काबुल' (१९३४–३५) में 'तारीख जबानहा दर अफगानिस्तान' (पृष्ठ ११९ से १५२ तक) नाम से एक विद्वत्तापूर्ण लेख लिखा है। महायुद्ध के समय लाहौर के कालेजों के कुछ लड़के छिपकर हिंदुस्तान से भाग निकले थे। उस वक्त अखबारों में उनकी बहुत चर्चा हुई थी। याकूबहसन उन्हीं नौजवान विद्यार्थियों में से एक थे। काबुल में रहते उनको २२ साल हो गए। वह अफगान प्रजा हैं; लेकिन अपने देश के साथ उनका अत्यंत प्रेम है। भाषा-

संबंधी खोजों से उनको पता लगा कि अफगानिस्तान की भाषाओं और जातियों का इतिहास भारत के साथ घनिष्ठ संबंध रखता है। तब से उनका उत्साह और भी बढ़ गया है। वैज्ञानिक खोजों में भी उनमें मातृभूमि की सेवा का भाव आ जाने से अपने काम में बड़ी सरसता मालूम होती है। यह मुसलमान हैं; और अपने धर्म को मानते हैं, लेकिन साथ ही वह यह भी अच्छी तरह समझ गए हैं कि जातीयता, संस्कृति, भाषा इन पर मजहब को दखल देने का कोई अख्तियार न होना चाहिए। मजहब बदलने से जाति नहीं बदल सकती। उन्होंने अफगानिस्तान की पश्तो, नूरिस्तानी (लाल काफिरी), पशाई, शगनी, उरमुड़ी, प्राचो, बिलोचो आदि भाषाओं की बहुत खोज की है, और उनकी खोज अब तक जारी है। वैसे मैं दो-तीन दिन बाद ही काबुल से चला आता, लेकिन याकूबहसनखाँ के आग्रह और दिलचस्पी को देखकर मुझे कुछ दिन और वहाँ ठहर जाना पड़ा। मैंने उन्हें अफगानिस्तान की हिंदू-आर्य भाषाओं, विशेष कर पश्तो, नूरिस्तानी, पशाई और प्राची के प्रधान और स्थानीय बोलियों पर उच्चारण और सुब्-तिङ् प्रत्यय के अनुसार नक्शों के साथ सुविस्तृत खोज करने का परामर्श दिया, और साथ ही हिंदू-आर्यों के विस्तार के बारे में एक नक्शा* बना दिया, जिससे मालूम हो कि किस काल में किस स्थान पर वे रहते थे और क्या व्यवसाय करते थे।

---

*	काल (ई० पू०)	वासस्थान	व्यवसाय
हिंदू-यूरोपीय			
केटम्, शतम्	३०००	बालतिक-वोल्गा	पशुपालन
लिथुअन-स्लाव, हिंदू-ईरानी	२५००	कालासागर-उराल	पशुपालन
ईरानी, हिंदू-आर्य	२०००	हिरात्-पामीर	कृषि
,,	१५००	वंक्षु-स्वात	कृषि
,,	१३००	हिंदूकुश-ऊपरी सिंधु,	कृषि

शुक्र (५ फरवरी) को तातील थी, इसलिये काबुल म्यूज़ियम देख नहीं सकते थे। एकेडेमी के इतिहास-विभाग के स्कालर अहमद-अलीखाँ ने कहा—फ्रेंच दूतावास के मोशिए मोनिए को लेकर म्यूज़ियम देखना अच्छा होगा। वह कई जगह की खुदाइयों में रहे हैं। मोशिए मोनिए बड़ी खुशी से हमारे साथ चलने के लिये तैयार हो गए, और उन्हीं की मोटरकार पर हम लोग दोपहर को 'मूज़ी काबुल' पहुँचे। म्यूज़ियम शहर से बाहर दारुलअमान में है। शाह अमानुल्ला यहाँ पर एक नया नगर बसाना चाहते थे। म्यूज़ियम के सामने उनका बनवाया महल अब भी मौजूद है, लेकिन खाली पड़ा है। कितनी ही और इमारतें उस वक्त बनवाई गई थीं, जिनको दफ्तर तथा दूसरे कामों के लिये इस्तेमाल किया जाता है। विश्व-विद्यालय भी इधर ही कायम होने जा रहा है। नई सरकार ने अमानुल्ला के इस नए नगर की योजना को छोड़ नहीं दिया है, वस्तुत: शाह नादिर और उनके पुत्र शाह जाहिर की हुकूमतों ने अमानुल्ला की किसी भी राजनीतिक, सामाजिक योजना को अग्राह्य नहीं बनाया। फर्क इतना ही है कि जिन बातों से पठानों के धार्मिक विश्वासों पर सीधी ठोकर लगती थी, उनको स्थगित या धीरे से करना शुरू किया है। अफगानी फौज और सेनापतियों की पोशाक बिलकुल यूरोपीय ढंग की है। दूसरे अफसर भी प्राय: सारे ही टाई, कोट, पतलून पहनते हैं और पगड़ी की जगह अफगानी टोपी लगाते हैं। ऊँची दीवार की बाल निकली यह टोपी तो रूस में भी बहुत अधिक पहनी जाती है। हाँ, हैट लगाने में कुछ हिचकिचाहट आ गई है; लेकिन स्कूल के लड़कों की पोशाक में छज्जेदार टोपी अनिवार्य है। दूसरे लोग भी शाम के वक्त अकसर फ्रेंच ढंग की गोल टोपी

हिंदू आर्य	११००	हिंदूकुश-ऊपरी गंगा,	उद्यान
,,	६००	हिंदूकुश-नमदा-गंडक	
,,	७००	हिंदूकुश-कोकण-गंगाद्वार	
,,	५००	हिंदूकुश-लंका-आसाम	
,,	३००	हिंदूकुश-बर्मा-सुमात्रा	

पहनते हैं। वजीर और सेनापति तक कभी कभी हैट पहनकर निकलते हैं। स्त्रियाँ आम तौर से सड़कों पर नहीं दिखाई पड़तीं; और जो दिखाई पड़ती भी हैं, वह बुरके में; लेकिन मुझे मालूम हुआ कि औरतें घरों के भीतर अपरिचित से भी परदा नहीं करतीं। अपनी ईरानी बहनों की तरह इन्होंने भी यूरोपीय पोशाक धारण कर ली है; और बहुतों ने बाल भी कटा लिए हैं। लोग बतला रहे थे कि शाह अमानुल्ला के शासन के अंतिम बरसों में पर्दा काबुल में बिलकुल टूट गया था; औरतें खुलेआम सड़कों पर पश्चिमी पोशाक पहने बे-नकाब घूमती थीं।

म्यूजियम (जादूघर) एक दोतल्ला खूबसूरत इमारत में है जो दो ही साल पहले बनकर तैयार हुई है। अमानुल्ला के समय में फ्रेंच मिशन ने हड्डा में खुदाई की थी, और वहाँ बहुत सुंदर सुंदर चूने आदि की बनी मूर्त्तियाँ मिली थीं। मैंने उन मूर्तियों के कुछ हिस्सों को पेरिस के मूजी-ग्यूमे में देखा था। उनके काफी भाग काबुल मे उस समय की म्यूजियम की इमारत में रखे हुए थे। जब काबुल पर बच्चा-सक्का का अधिकार हो गया, तो मजहब के दीवानों ने कला के उन उत्कृष्ट नमूनों पर भी हाथ साफ किया। हम लोग पहले उस कमरे में गए, जिसमें हड्डा की मूर्तियाँ हैं। सैकड़ों चेहरे मौजूद हैं। इन चेहरों के बनानेवालों ने भाव-चित्रण और जातीय विशेषता के साथ रेखांकन मे कमाल कर दिया है। कोई दो चेहरा एक तरह का नहीं है। मैंने अपने दोस्त से इन चेहरों की तारीफ़ की, और यह भी कहा कि यह इतनी बड़ी संख्या में मौजूद हैं। अहमदअली साहब ने कहा—हड्डा के चित्रों की तो एक बड़ी भारी राशि थी। अगर आप सबको देख पाते तो और भी आश्चर्य करते। अधिक संख्या को तो कला के दुश्मनों और राष्ट्र के शत्रुओं ने नष्ट कर दिया है। मैंने पूछा—ये कैसे बच गए? जवाब मिला—इतना भारी संग्रह था, कि एक एक को तोड़ने में वे असमर्थ थे। बीसवीं सदी की इस बर्बरता को सुनकर रोंगटे खड़े हो गए। हड्डा के संग्रह में एक पत्थर पर बीच में मैत्रेय और आस-पास

कुछ और मूर्तियाँ उत्कीर्ण थीं। मैंने देखा मैत्रेय के दाहिने बाएँ जो स्त्री-पुरुषों के आकार बने हैं, उनमें फर्क है। गौर से देखने पर मालूम हुआ कि एक ओर शक स्त्री-पुरुष टोपी, जामा और पाजामे में हैं, दूसरी ओर के स्त्री-पुरुष और बच्चे की वेशभूषा उनसे बिलकुल भिन्न है। सीधे-सादे पाजामे की जगह गोल फूला-सा सुन्दर उन्होंने पहन रक्खा है। वही सलवार जिसे पठान स्त्री-पुरुष आज भी पहनते हैं। उनके कानों और कंठ में भारतीय ढंग के आभूषण हैं। मैंने अपने साथियों का ध्यान उस ओर आकर्षित करते हुए कहा—यह देखिए, १७०० वर्ष पूर्व के पठान दंपती खड़े हैं। अहमदअली साहब बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि इतने दिनों से ये मूर्तियाँ यहाँ थीं, और उन्होंने उन्हें नहीं पहचाना। ईसा की दूसरी-तीसरी शताब्दी में भी पठान स्त्री-पुरुष सलवार पहनते थे। यह इस गांधार प्रस्तर-शिल्प के नमूने ने सिद्ध कर दिया।

दूसरी जगह बामियाँ की दीवारों पर उत्कीर्ण चित्रों की कुछ नकलें देखीं। बामियाँ के पर्वत-गात्र में उत्कीर्ण सैकड़ों फीट ऊँची बुद्ध-मूर्तियाँ अपनी विशालता के लिये संसार मे प्रसिद्ध हैं। दूर दूर से लोग बामियाँ को देखने आते हैं और निर्माताओं के श्रम, कला-नैपुण्य और हिम्मत की दाद देते हैं। आज के अफगान भी अपने पूर्वजों की इस कृति पर अभिमान करते हैं। बामियाँ के मूर्तियों के गवाक्षों और भीतों में सुंदर रंगीन चित्र थे, वैसे ही जैसे कि अजंता में पाए जाते हैं। लेकिन इनका अधिकांश भाग नष्ट हो चुका है। कहीं कहीं ऊँचे गोखों में कुछ चित्र बच गए हैं, और उनकी नकल करवाई गई है। काबुल आर्ट् स्कूल के विद्यार्थियों को यह चित्र वैसे ही इंसपीरेशन (मानसिक प्रेरणा) देते हैं, जैसे भारतीय कला के विद्यार्थियों को अजंता के चित्र। मैंने देखा, कितने ही खंडित चित्रों का प्रतिचित्रण विद्यार्थी कर रहे थे, और कितनों के खंडित अंश को अपने मन से पूरा कर दिखाने की कोशिश कर रहे थे। बामियाँ के विशाल बुद्ध-रूपों का निर्माण ईसा की पहली शताब्दी में सम्राट् कनिष्क और उनके उत्तराधिकारियों

ने कराया था। कपिशा-उपत्यका के स्याहगिर्द (शाहगिर्द) स्थान से मिली कुछ मिट्टी की रंगीन मूर्तियाँ रखी थीं। रेखांकन, आभूषण आदि में यह मध्यकालीन भारतीय मूर्तियों जैसी हैं। एक जगह पचासों स्त्री-मूर्तियों के सिर रखे थे। इनमें पचासों प्रकार से केशों को सजाया गया था; और कुछ सजाने के ढंग तो इतने आकर्षक और बारीक थे कि मोशिए मोनिए कह रहे थे—इनके चरणों में बैठकर पेरिस की सुंदरियाँ भी बाल का फैशन सीखने के लिये बड़े उल्लास से तैयार होंगी। उस वक्त यंत्र से बालों में लहर डालने का ढंग मालूम नहीं था, फिर न मालूम कैसे उस वक्त की स्त्रियाँ ऐसी विचित्र और बारीक लहरें बनाने में समर्थ होती थीं।

एक कमरे में बेग्राम-बुलंद शहर की खुदाई में प्राप्त चीजें रखी हुई थीं। बेग्राम कपिशा (कोह-दामन) उपत्यका के प्राचीन नगर का खंडहर है। पुरातत्त्वज्ञों का अनुमान है कि यहीं पर कनिष्क की दूसरी राजधानी थी। खंडहर मीलों तक चला गया है। खुदाई अभी थोड़ी सी जगह मे पहली ही बार शुरू हुई है; और उसमें प्राप्त चीजों को देखकर दंग रह जाना पड़ता है। खुदाई अफगान सरकार की आज्ञा से फ्रेंच मिशन करवा रहा है और जो चीजें प्राप्त होती हैं, उनको दोनों बाँट लेते हैं। इस प्रकार जितनी चीजें हमने म्यूजियम में देखीं, वे अफगान सरकार के भाग की हैं, फ्रेंच-मिशन ने अपने हिस्से को मूजी-ग्यूमे (पेरिस) में रखा है। शीशे के अंदर हाथी-दाँत पर उत्कीर्ण मूर्तियाँ देखकर मैं तो चकित हो गया। ये मूर्तियाँ ठीक वैसी ही हैं, जैसी साँची की। इसमें वही मौर्य-शुंगकालीन चेहरे-मोहरे, वही वस्त्राभूषण और वही शरीर के अंकन का ढंग पाया जाता है। हाथी के दाँत की चीजों का आधा भाग ही हमारे सामने था। पेरिस में गए दूसरे भाग को हमने नहीं देखा, लेकिन हम निस्संकोच कह सकते हैं कि यह साँची, भरहुत या इसी तरह के किसी दूसरे मौर्य-कालीन स्तूप और उसके प्रस्तरशिल्प की नकल है। बहुत संभव है कि साँची, भरहुत और बुद्ध-गया के दृश्यों से यदि बारीकी के साथ

मिलान किया जाय, तो मूल का पता लग जाय। यह भी संभव है कि उस तरह का कोई स्तूप अफगानिस्तान ही में रहा हो, क्योंकि अफगानिस्तान भी तो मौर्य-साम्राज्य के अंतर्गत था। हाँ, वैसे वस्त्र, गर्म जगहों में पहने जा सकते हैं। अफगानिस्तान जैसी सर्द जगह में इतने कम वस्त्रों में काम नहीं चल सकता। हाथी-दाँत पर क्यों किसी पुराने स्तूप की नकल की गई? पवित्र देवालयों और स्तूपों की नकल करने की प्रथा हम तिब्बत में प्राप्त कुछ नमूनों से जानते हैं। वहाँ नर्थङ् मठ में मैंने ख़ुद बुद्ध-गया के मंदिर को उसके प्राकार, तीनों फाटकों और भीतर के बहुत से स्तूपों और अशोक-कालीन कठघरे के साथ पत्थर और लकड़ी के दो नमूनों के रूप में पाया। यह नमूना बारहवीं सदी में बना था। बेग्राम में प्राप्त नमूना चौथी सदी के पीछे का तो हो नहीं सकता। बहुत मुमकिन है कि वह उससे दो-तीन सदी और पहले बना हो। ये चीजें बेग्राम के जिस खँडहर में मिलीं, वह किसी संपन्न बौद्ध गृहस्थ का घर था। हाथी के दाँत के चित्र तीन बक्सों में मिले थे। इनमें हथेली से कुछ कम बड़े हाथी के दाँत के फलक पर दो स्त्री-चित्र अंकित हैं। ये उत्कीर्ण नहीं हैं। इनमें सिर्फ बारीक रेखाएँ ही खोदी गई हैं। संभव है, शुरू में इनपर रंग भी रहा हो; और १५ सदियों से जमीन के अंदर दफन रहने के कारण वह उड़ गया हो। इन चित्रों में अजंता के उत्कृष्ट स्त्री-चित्रों का पूर्वाभास मिलता है। मैंने कहा—ऐसी अनमोल निधि का परिचय तो बाहर के विद्वत्समाज को तुरंत मिलना चाहिए था। अफगानिस्तान में यह तो अद्भुत चीज मिली है। ऐसी चीज है, जिसकी श्रेणी की वस्तुएँ हिंदुस्तान में भी बहुत कम मिली हैं और हाथी-दाँत की इतनी सुंदर कला तो कहीं अब तक नहीं मिली थी। मुझे याद आया कि साँची के एक तोरण-द्वार पर दाताओं का नाम 'विदिशा के दंतकार' लिखा गया है। उस लेख से मालूम होता है कि हाथी के दाँत पर काम करनेवाले उस समय काफी संख्या में रहते थे और उनका पेशा इतना चला हुआ था कि वे काफी धन-संपन्न थे तभी तो वे साँची के उस

पाषाण-तोरण जैसी एक इमारत बनाने में समर्थ हुए। मुमकिन है, आगे या पीछे इन दंतकारों ने साँची के नयनाभिराम स्तूप को हाथी-दाँत पर उतारा हो।

बेग्राम की खुदाई में १॥ हाथ लंबी लकड़ी की गंगा-जमुना की मूर्तियाँ मिली हैं। इनकी बनावट गुप्त-कालीन या कुछ पीछे की-सी मालूम होती है। लकड़ी यद्यपि बहुत जगह सड़-गल गई है, लेकिन तो भी स्त्री-आकार और मगर (गंगा-वाहन) और कछुए (यमुना-वाहन) का ढाँचा साफ दिखलाई पड़ता है। बेग्राम के उसी धनिक के घर से बहुत से काँच के मद्यपात्र और पान-चषक मिले हैं। इन काँच के बर्तनों में से कितने ही रूम और यूनान तक से आए होंगे। उनकी सुंदर बनावट ही चित्ताकर्षक नहीं है, बल्कि उनके देखने से यह भी मालूम होता है कि कापिशायिनी सुरा अपने स्वाद और रंग ही के लिये प्रसिद्ध नहीं थी, बल्कि उसके रखने और पीने के पात्र भी बड़े नफीस होते थे। कपिशा को पाणिनि ने एक नगर के नाम के तौर पर लिखा है; और वह कपिशा नगर यही होगा, जहाँ पर कि आज बेग्राम का खँडहर मौजूद है। कपिशा कब नष्ट हुई ? मुसलमानों के अफगानिस्तान पर आरंभिक आक्रमण के समय (नवीं-दसवीं शताब्दी)। तो यहाँ कोई इतना बड़ा शहर सुनने में नहीं आता। ह्वेन्-च्वांग और फाह्यान के समय में शहर जरूर था, लेकिन उन्नतावस्था में था या अवनतावस्था में, इसका पता नहीं लगता। बहुत संभव है कि कपिशा का संहार पाँचवीं सदी मे हूणों ने किया हो, जिनके ही हाथ से तक्षशिला का अंतिम संहार हुआ। हूणों का आक्रमण अचानक हुआ था और उन्होंने नगरों को भस्म नहीं किया था बल्कि इतना भीषण नर-संहार किया था कि शहर के शहर खाली हो गए थे। ऐसी अवस्था में लोग घर की सारी चीजों को लेकर न भाग सकते थे, और न पीछे से आकर उन्हें सँभाल सकते थे। इसी लिये कपिशा के खँडहरों से उस समय के रहन-सहन, पूजा-अर्चा आदि के संबंध की बहुत-सी चीजें मिलने की आशा है। बेग्राम काबुल से ४० मील पर है।

× × × ×

श्री याकूबहसनखाँ ने यद्यपि नियम से भाषा-तत्त्व का अध्ययन नहीं किया है, और उन्होंने संस्कृत भी नहीं पढ़ी है, लेकिन उनमें प्रतिभा है। पंजाबी, हिंदुस्तानी, पश्तो और फारसी का अच्छा ज्ञान होने से भाषाओं की समानता और असमानता पर उनका काफी ध्यान आकर्षित हुआ है। इसी से वह भाषा-तत्त्व-संबंधी खोज में लगे। मेरे वहाँ रहने के समय का उन्होंने अच्छा उपयोग किया। उन्होंने हजारों पश्तो शब्दों के संस्कृत प्रतिशब्द मुझसे पूछे। पश्तो को कुछ लोग खींच-तानकर फारसी से मिलाना चाहते थे; लेकिन याकूबहसन खाँ ने पंजाबी, हिंदुस्तानी तथा कुछ यूरोपीय विद्वानों के संगृहीत शब्दों का सादृश्य दिखलाकर पश्तो का संस्कृत से संबंध साबित किया। हम दोनों ने जो इधर संस्कृत से पश्तो को मिलाना शुरू किया, तो यह स्पष्ट हो गया कि पश्तो संस्कृत-वंश की भाषा है। उसके उच्चारण में और कुछ शब्द-कोष में भी फारसी की छाप पड़ी है, लेकिन संस्कृत की अपेक्षा वह नगण्य है। आ् का फारसी में आब् हो जाता है; और पश्तो में उसी का ओबा; लेकिन पश्तो में ऐसे शब्दों की अधिकता पाई जाती है जिनका सादृश्य फारसी में न मिलकर संस्कृत में ही मिलता है। जैसे संस्कृत में पानी के लिये आनेवाला शब्द 'वारि' पश्तो में 'वाल' है और संस्कृत 'तोय' तो 'तोय' ही रह जाता है। कितने ही वैदिक शब्दों का प्रयोग भी पश्तो में मिलता है। जैसे 'गिरिशा' का 'ग़रसै' (गिरि मे रहनेवाला) 'अपसा' का 'ओसै' (पानी में रहनेवाला)। एक दिन याकूबहसन साहब ने काबुल के पास की एक पहाड़ी 'जम् ग़र्' के नाम के बारे में कहा—यह शब्द अरबी-फारसी का नहीं है। 'गिरि' का 'ग़र्' हो जाता है और जम् का भी कोई संस्कृत प्रतिशब्द होना चाहिए। मैंने ज्योतिषियों और सयानों की भाषा में कहना शुरू किया—'यह पहाड़ काबुल शहर के दक्खिन ओर है ?' जवाब मिला—'हाँ'

"उसके पास कब्रिस्तान है ?"

"हाँ!"

हमारे दोस्त को आश्चर्य होने लगा कि मुझे यहाँ तक कैसे मालूम हो गया। मैंने कहा—आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। ज्योतिष और भूत-प्रेत में हमारा विश्वास नहीं है। हम देखना चाहते थे, कि क्या हम जम् शब्द को संस्कृत 'यम' से बदल सकते हैं? यम मृत्यु का देवता है। उसकी दिशा दक्षिण है; और हिंदुओं के शहरों और गाँवों में मरने के बाद मुर्दों को जिस मरघट में जलाया जाता है, वह शहर से दक्षिण ओर ही रहता है। यह देखा गया है, कि जातियों ने अपना धर्म छोड़कर ऐसे धर्म को अपनाया, जो उनके इतिहास, संस्कृति—सभी चीजों से उल्टा है; लेकिन तब भी दो बातों को वे नहीं छोड़ सकीं। एक तो अपने पुनीत स्थान (देवालय, मठादि के स्थान) की पवित्रता और सम्मान। मंदिर, मठ अपने पूर्व रूप में नहीं रहे, लेकिन वही स्थान मसजिद, रौजा या जियारत के रूप में पूजा जाने लगा। दूसरी बात जो वह नहीं छोड़ सकीं, वह यही मरघट है। उन्हीं पुराने मरघटों को इसलाम स्वीकार करने पर कब्रिस्तान के रूप मे बदल दिया गया। इस प्रकार आपका जम्‌गर् यमगिरि है।

पठानों के एक कबीले को 'सड़वन' कहते हैं। प्रश्न था, इसका क्या अर्थ हो सकता है? पूछने पर मालूम हुआ, सड़ शर या सरकंडे को कहते हैं और 'वन'=वाला को। मैंने कहा—यह शरवत् हो सकता है। अंबाला जिले में बहनेवाली घग्घर नदी पुराने समय में शरावती कही जाती थी; और वही प्राची (पूर्व के मुल्क युक्तप्रांत और बिहार) और उदीची (पंजाब) को अलग करती थी। इसी का दूसरा नाम सरस्वती भी मिलता है। गोत्रों की सूची ढूँढ़ने से शरद्वत और सारस्वत दो नाम हमें इसी अर्थ के द्योतक मिलते हैं। इस प्रकार जान पड़ता है कि सड़वन् गर्गश्त (गिरिगत) पठान वंश की भ्रातृ-शाखा सारस्वत या शरद्वत हो सकती है। सुलेमान-पर्वत पर बसने के कारण शायद एक शाखा को 'गर्गश्त' कहा गया।

भाषा-तत्त्व, वैदिक-इतिहास और मानव-तत्त्व की गवेषणा के लिये अफगानिस्तान एक बड़ी खान है और यह एक बड़े संतोष की बात है कि आज शिक्षित पठान-समाज इस तरह की खोजों में बड़ी दिलचस्पी ले रहा है; और मजहब तथा संस्कृति को एक दूसरे के क्षेत्र में नाजायज दखल देने को गवारा नहीं करता।"

—'सोवियत भूमि' से।

क्या प्रस्तावों द्वारा हिंदी का काया-कल्प हो सकता है ?

उपर्युक्त शीर्षक से डा० धीरेंद्र वर्मा का एक विचारपूर्ण लेख साप्ताहिक 'राष्ट्रमत' के वर्ष १, अंक १६ में प्रकाशित हुआ है। वह यहाँ अविकल उद्धृत है—

जब से १०, १२ करोड़ की साहित्यिक भाषा हिंदी के भारत-राष्ट्र-भाषा अर्थात् अँगरेजी के समान चंद लाख लोगों की अंतर्प्रांतीय भाषा बनने का प्रश्न उठा है तब से लोगों को हिंदी में अनेक त्रुटियाँ दिखलाई पड़ने लगी हैं। इनमें मुख्य व्याकरण-संबंधी त्रुटियाँ हैं—विशेषतया लिंग-संबंधी। इन सुधार-आयोजनाओं पर कुछ व्यक्तियों तथा संस्थाओं द्वारा गंभीरतापूर्वक विचार हो रहा है। हिंदी-भाषियों की साहित्यिक संस्थाओं के सूत्रधार प्रायः राजनीतिक क्षेत्र में कार्य करनेवाले हैं अतः यह स्वाभाविक है कि उस क्षेत्र के अपने अनुभव को ये महानुभाव साहित्य तथा भाषा पर भी घटित करना चाहते हैं। उनकी धारणा है कि आंदोलन तथा प्रस्तावों के द्वारा वे भाषा के प्रवाह को भी जिधर चाहें मोड़ सकते हैं। वास्तव में यह भारी भ्रम है। सभा-सम्मेलनों के प्रस्तावों के बल पर हिंदीभाषा के रूप को बदलने में किस प्रकार की कठिनाइयाँ पड़ेंगी, उनका दिग्दर्शन बहुत संक्षेप में नीचे कराया जाता है।

साधारणतया प्रत्येक व्यक्ति अपनी मातृभाषा को अनुकरण के द्वारा सीखता है, व्याकरण के सहारे नहीं। तीन वर्ष का भा

हिंदी-भाषी बालक शुद्ध हिंदी बोल लेता है किंतु वह यह भी नहीं जानता कि संज्ञा और क्रिया में क्या भेद है अथवा उसकी मातृ-भाषा में कितने लिंग या वचन होते हैं। फलतः हिंदी भाषा में लौट-पौट करने के प्रस्ताव ६६ प्रतिशत हिंदी-भाषियों तक नहीं पहुँच सकेंगे, न वे उन्हें समझ ही सकेंगे। यदि 'सुधरी हुई' हिंदी में कुछ किताबें निकाली गईं और हिंदी-भाषी बच्चों को जबरदस्ती पढ़ाई गईं तो सर्व-साधारण द्वारा बोली जानेवाली हिंदी और इस सुधरी हुई हिंदी में संघर्ष होगा। क्योंकि हिंदीभाषी बालक अपनी भाषा को पुस्तक पढ़ना सीखने से पहले ही सीख चुकता है अतः वह इस सुधरी हुई किताबी हिंदी से सहसा प्रभावित नहीं हो सकेगा। हिंदी के वर्त्तमान स्थिर रूप के संबंध में एक भारी गड़बड़ी अवश्य पैदा हो सकती है।

व्याकरण की पुस्तकों के सहारे हिंदी सीखनेवाले अन्यभाषा-भाषियों को हिंदी के नाम से अवश्य कोई भी भाषा सिखलाई जा सकती है। ऐसी परिस्थिति में वास्तविक हिंदी तथा इस सुधरी हुई राष्ट्रभाषा अथवा हिंदी-हिंदुस्तानी में भारी अंतर हो जावेगा जिससे हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के स्वप्न में सहायता के स्थान पर हानि पहुँचने की अधिक संभावना है। अन्यभाषाभाषी यह कह सकते हैं कि आपकी भाषा का कोई निश्चित रूप ही नहीं है—कुछ पुस्तकों में एक भाषा है, कुछ में दूसरी, तथा बोलनेवाले भिन्न भाषा बोलते हैं। इनमें से हिंदी किसको माना जावे ?

इन कठिनाइयों के अतिरिक्त प्राचीन तथा अब तक के प्रकाशित हिंदी-साहित्य की भाषा में और इस सुधरी हुई हिंदी में भी संघर्ष उपस्थित होगा। उदाहरणार्थ या तो सूर, तुलसी और केशव के लिंग के प्रयोगों को ठीक किया जावे तथा भारतेंदु, द्विवेदीजी, गुप्तजी, प्रेमचंद, प्रसाद, उपाध्यायजी आदि के ग्रंथों के नए संशोधित संस्करण निकाले जावें, अथवा हिंदी के दो रूप माने जावें—एक सुधारकों से पूर्व के साहित्य का तथा दूसरा सुधार-युग के बाद के साहित्य का। यह हिंदी भाषा को सरल करना तो नहीं ही हुआ, इतना निश्चित है।

एक बात और चिंत्य है। हिंदी को राष्ट्र-भाषा बनाने में बहुत अधिक सहायता उर्दू के प्रचार के कारण मिल रही है। मुसलमानों के प्रभाव के साथ साथ उर्दू दक्षिण में हैदराबाद तक पहुँच गई; उत्तर भारत के समस्त नगरों में और कस्बों में इसका प्रचार था ही। वर्त्तमान हिंदी और उर्दू के व्याकरणों का ढाँचा लगभग समान है। किंतु सुधार हो जाने पर खड़ी-बोली हिंदी और उर्दू में भाषा की दृष्टि से भी भेद हो जावेगा। उर्दू वर्ग इन सुधारों को मानने से रहा। ऐसी अवस्था में हिंदी का पक्ष और भी अधिक निर्बल हो जावेगा—हिंदी-हिंदुस्तानी; उर्दू-हिंदुस्तानी निकट आने के स्थान पर एक दूसरे से दूर हो जावेंगी।

यहाँ यह स्मरण दिला देना आवश्यक है कि भाषा के रूप में परिवर्तन करना एक बात है और अक्षर-विन्यास आदि में एकरूपता लाने का प्रयास दूसरी बात है। 'हुये' कैसे लिखा जावे? 'हुए' या 'हुये'। कारक-चिह्न संज्ञा तथा सर्वनाम के साथ लिखे जावें या पृथक्? 'धर्म्म', 'कर्म्म', 'आर्य्य' आदि में दो व्यंजन रहें या एक? इस तरह की स्थिरता लाना साहित्यिक भाषा मे अनिवार्य है तथा संभव है। हिंदी की लेखन-शैली में तथा व्याकरण-संबंधी रूपों में भी जहाँ एक से अधिक रूप प्रचलित हैं (उदाहरणार्थ दही अच्छा है, अच्छी नहीं) उनमें भी एकरूपता लाई जा सकती है और उसके लाने का प्रयास करना चाहिए। किंतु 'बात', 'रात' आदि समस्त अकारांत अप्राणिवाचक शब्द पुल्लिंग कर दिये जावें जिससे 'बात अच्छा है' और 'रात हो गया' जैसे प्रयोग आदर्श हिंदी समझे जावें या ऐसे प्रयोगों को भी ठीक समझा जावे, इस प्रकार के प्रस्ताव भाषा के रहस्य को न जाननेवाले ही कर सकते हैं। इस प्रकार के उद्योगों का परिणाम कुछ समय के लिये अव्यवस्था उपस्थित करके हिंदी की बाढ़ को रोक देने के सिवा और कुछ नहीं हो सकेगा। यों समुद्र की लहरों को रोकने का प्रयास करनेवाले राजा कैन्यूट भाषा के क्षेत्र में भी प्राचीनकाल से होते चले आए हैं और भविष्य में भी होते रहेंगे।

—

पहाड़पुर, (बंगाल) में महत्त्वपूर्ण शोध

भारतीय पुरातत्त्वविभाग के प्रधानाध्यक्ष रावबहादुर श्री काशीनाथ दीक्षित ने हाल में बंगाल के पहाड़पुर की खुदाई का विवरण प्रकाशित किया है, जिससे हमें अनोखे चौमहले मंदिर और एक बहुत बड़े विहार की सूचना मिलती है। पहाड़पुर का टीला प्राय: २० वर्ष से पुरातत्त्व विभाग के संरक्षण में था और पहली खुदाई वहाँ १६ वर्ष पूर्व हुई थी। वह पहाड़-सा टीला, जिसके कारण उस स्थान का नाम पहाड़पुर पड़ा है, सदा आकर्षक रहा होगा। किंतु किसी को भान न था कि इसके अंतर से भारत के विशालतम कीर्ति-चिह्न का शोध होगा। इस शोध के विवरण से बंगाल की कला और संस्कृति के इतिहास मे एक नया और महत्त्वपूर्ण अध्याय तो जुड़ जाता ही है, बर्मा, जावा तथा मलाया द्वीपों के विशेष स्थापत्य के लुप्त पूर्वसूत्र का पता लग जाता है।

मंदिर के मध्य में चौकोर देवस्थल है। यह चारों ओर से निकला हुआ और चौमहला है, जिस प्रकार के मंदिर बर्मा, जावा आदि में प्राय: पाए जाते हैं। मंदिर के अधोभाग की प्रस्तरमूर्तियों से ईसा की छठी से सातवीं शताब्दी के मध्य की नई मूर्ति-कला का परिचय मिलता है। यह आश्चर्यजनक है कि इस मंदिर में, जिसे ईसा की आठवीं शताब्दी में पालसम्राट् धर्म्मपाल द्वारा निर्मित बौद्ध विहार समझना चाहिए, मुख्यत: ब्राह्मण मूर्तियों की यह माला भित्तियों में ऐसे सुरक्षित रूप में उपलब्ध हुई है। यहाँ कृष्ण-राधा की बाललीला के मौलिक निरूपण, महाभारत और रामायण के आख्यान, शिव, गणेश और दिग्गीशों के विभिन्न रूप दर्शनीय हैं। इससे उस युग की धार्मिक सहिष्णुता का सुंदर परिचय मिलता है। इसके अतिरिक्त बहुत से बहुमूल्य मृण्मय फलक भी पहाड़पुर में प्राप्त हुए हैं जिनमें अनेक तत्कालीन वर्णन हैं। विवरण अनेक महत्वपूर्ण चित्रों से सज्जित है।

—

समीक्षा

हिंदी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—लेखक श्री रामकुमार वर्मा एम० ए०; प्रकाशक रामनारायणलाल, इलाहाबाद; पृष्ठ-संख्या ७६६+५८। मूल्य ४॥)

इस पुस्तक में चारण-काल और धार्मिक-काल का इतिहास दिया गया है। पुस्तक के आरंभ में ग्रंथकर्ता लिखते हैं—"साहित्य का इतिहास आलोचनात्मक शैली से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। अतः ऐतिहासिक-सामग्री के साथ कवियों एवं साहित्यिक प्रवृत्तियों की आलोचना करना मेरा दृष्टिकोण है। प्रत्येक काल-विभाग के आरंभ में अनुक्रमणिका के रूप में उस काल की समस्त प्रवृत्तियों का निरूपण साहित्यिक एवं दार्शनिक ढंग पर किया गया है। कवियों के वर्गीकरण में विशेष ध्यान इस बात का रखा गया है कि तत्कालीन राजनीतिक और साहित्यिक परिस्थितियों ने उन्हें और उनकी कृतियों को कहाँ तक प्रभावित किया है और समय की प्रवृत्तियों और उनकी कृतियों में कितना साम्य है। अतः कवियों की आलोचना में केवल उनके गुण-दोषों का विवेचन ही नहीं है वरन् विजातीय शासकों की नीति के फल-स्वरूप उनकी शैली में जिन भावनाओं का जन्म हुआ है उनका भी स्पष्टीकरण है। धार्मिक सिद्धांतों की आलोचना करनेवाले प्रायः सभी प्रधान ग्रंथों के दृष्टिकोण की विवेचना और आलोचना की गई है और उसके प्रकाश में साहित्य के इतिहास की रूप-रेखा स्पष्ट की गई है। इस प्रकार एक ही स्थल पर विषय-विशेष की समस्त सामग्री इतिहास के विद्यार्थियों को प्राप्त होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।"

हम इस कथन के आधार पर इस बात का विचार करेंगे कि वर्मा जी अपने उद्योग में कहाँ तक सफल हुए हैं। केवल अंतिम वाक्य को छोड़कर हमें और कोई भी तथ्य की बात नहीं मिली। धार्मिक-काल में संतकाव्य, प्रेमकाव्य, रामकाव्य, कृष्णकाव्य उपविभाग किए

गए हैं। उदाहरण-स्वरूप यह प्रश्न उठता है कि कृष्णकाव्य के अंतर्गत किस सिद्धांत के आधार पर कृपाराम, सेनापति, बनारसीदास, अहमद, सुंदरदास, भुवाल, सुखदेव मिश्र आदि आ सकते हैं। ऐसे ही चारण-काल में भुवाल कवि की कैसे गिनती हो सकती है, यह समझ में नहीं आता। सारांश यह है कि इस ग्रंथ की विशेषता यही है कि इसमें इन दोनों कालों में जितने कवियों का पता चला है उन सब का उल्लेख कर दिया गया है और उनके विषय में अब तक जो कुछ लिखा-पढ़ा गया है उस सब का समावेश कर दिया गया है। भुवाल कवि का समय १००० न मानकर, जैसा डाक्टर हीरालाल ने सिद्ध किया है, १७०० माना गया है; पर उसका विवरण खुमानरासो और बीसलदेव-रासो के बीच में दिया गया है। यदि १७०० संवत् ठीक है तो जहाँ समयानुक्रम से भुवाल का स्थान होना चाहिए वहाँ उसका उल्लेख करना चाहिए। यह समझ में नहीं आता कि ऐसा क्यों किया गया। इस पुस्तक का नाम "आलोचनात्मक इतिहास" रखा गया है, पर जब तक यह न ज्ञात हो कि आलोचना से ग्रंथकर्ता का क्या तात्पर्य है तब तक यही मान लेना पड़ेगा कि किसी ग्रंथकार के विषय में जितनी सम्मतियाँ अनेक विद्वानों ने दी हैं उन सब का उल्लेख कर देना ही वर्मा जी के अनुसार 'आलोचना' है। एक विद्वान् के लिये, जो युनिवर्सिटी का प्रोफेसर हो, ऐसी बात कह देना कदापि उचित नहीं। आपने यह भी कहा है कि इस ग्रंथ में मेरी अपनी रिसर्च भी सम्मिलित है। हमने बहुत खोजा पर हमें कहीं भी इसका पता न चला। यदि रिसर्च का उदाहरण देखना हो तो (पृष्ठ ७५२ से ७५५) गोरा बादल की कथा के संबंध में देखिए। जो बात निश्चित हो चुकी है उसमें भी वर्मा जी को संदेह है। अस्तु, हमारे विचार में इस पुस्तक की उपयोगिता इतनी ही है कि एक अच्छा संग्रह प्रस्तुत कर दिया गया है। उसमें न आलोचना है, न रिसर्च; और ग्रंथकर्ता ने भूमिका में जो कुछ कहा है उसे पूर्ण करके दिखाने में वे सफल नहीं हुए।

—"शु"

त्रिपुरी का इतिहास—लेखक श्री व्योहार राजेन्द्रसिंह एम० एल० ए० तथा श्री विजयबहादुर श्रीवास्तव बी० एस्-सी०, एल्-एल० बी०; प्रकाशक मानसमंदिर, जबलपुर; १९३९; पृष्ठसंख्या २२२; मू० १॥।)

भारतीय राष्ट्रपरिषद् (कांग्रेस) के बावनवें अधिवेशन के कारण प्रायः सभी लोगों ने इस वर्ष त्रिपुरी का नाम सुना होगा। कालचक्र की विचित्र गति से आज त्रिपुरी अथवा तेवर मध्यप्रांत के अंतर्गत जबलपुर जिले में नर्मदा-तट पर केवल एक छोटा-सा ग्राम है; किंतु प्राचीन समय में यह एक अत्यंत उन्नतिशील और महत्त्वपूर्ण स्थान था। इसका उत्थान लगभग नवीं शताब्दी के अंत में हुआ, जब कि हैहय कार्तवीर्य अर्जुन के वंशज कोकल्ल ने त्रिपुरी को अपने साहस और पराक्रम से एक शक्तिशाली राज्य का केंद्र बनाया। यह राजवंश इतिहास में हैहय, कलचुरि अथवा चेदि नाम से प्रसिद्ध है। कोकल्ल ने चंदेल तथा राष्ट्रकूट कुलों से वैवाहिक संबंध कर अपने प्रभाव को सुदृढ़ किया। तत्पश्चात् गांगेयदेव ने, जिसकी उपाधि विक्रमादित्य थी, अपने सैनिक बल से प्रयाग, वाराणसी और तीरभुक्ति (तिरहुत) पर आधिपत्य जमाया। किन्हीं लेखों से तो यहाँ तक ज्ञात होता है कि उसके यश का प्रसार उत्कल व कुंतल तक हुआ। गांगेयदेव के पुत्र लक्ष्मीकर्ण (१०४१–१०७२ ई०) के राज्य-काल में त्रिपुरी का गौरव बढ़ता गया। उसने काशी में सुंदर एवं विशाल कर्णमेरु नामक शिव का मंदिर निर्माण करवाया; और उसकी विजयपताका कान्यकुब्ज तथा कीर प्रदेश तक फहराई। उसने परमारनरेश भोज और गौड़ाधिप नयपाल से भी सफलतापूर्वक युद्ध किया। किंतु वृद्धावस्था में लक्ष्मीकर्ण को कई समकालीन राजाओं से (यथा गुजरात का भीम प्रथम, कल्याणी का सोमेश्वर आहवमल्ल चालुक्य, और कीर्तिवर्मन् चंदेल) हार माननी पड़ी। इसके बाद कलचुरि वंश का पतन प्रारंभ हुआ। यश:कर्ण के समय में तो लक्ष्मदेव परमार ने त्रिपुरी में खूब लूट-मार की। फिर गयाकर्ण भी मदनवर्मन् चंदेल से

पराजित हुआ। इस प्रकार समृद्धि के शिखर पर पहुँचकर त्रिपुरी के भाग्य ने पलटा खाया, और धीरे धीरे इसका ह्रास होता ही गया। खेद की बात है कि ऐसी प्राचीन नगरी का कोई क्रमबद्ध इतिहास हिंदी में अभी तक नहीं लिखा गया था। लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक को छपाकर एक बड़े अभाव की पूर्ति की है। इसमें सिर्फ सन्-संवत् और घटनाओं का ही वर्णन नहीं है, बल्कि राजनीति, समाज, धर्म, कलादि सांस्कृतिक पहलुओं पर भी प्रकाश डाला गया है। सब से उत्तम बात तो यह है कि ग्रंथ कथात्मक न बनाकर शोध की आधुनिक शैली से लिखा गया है। लेखक ने प्राचीन साहित्य, शिलालेख, ताम्रपत्र, मुद्रा, मूर्ति इत्यादि सामग्रियों का योग्यता के साथ उपयोग किया है। हिंदी संसार को ऐसे ग्रंथों का समादर करना चाहिए। पुस्तक में कुछ छापे की तथा अन्य छोटी त्रुटियाँ रह गई हैं। आशा है, दूसरे संस्करण में उनका सुधार हो जायगा।

—रमाशङ्कर त्रिपाठी

एम० ए०, पी-एच० डी० (लंदन)

जैबुन्निसा के आँसू—लेखक श्री ओमप्रकाश भार्गव बी० एस्-सी०, विशारद और श्री ईश्वरीप्रसाद माथुर बी० ए०; पृष्ठसंख्या १२४ पोस्तीन, मुखपृष्ठ सभी जोड़कर, मूल्य १)

आरंभ में एक प्राक्कथन तथा एक परिचय में लेखकों की साहित्य-सेवा आदि का परिचय दिया गया है। इसके अनंतर शाहजादी जैबुन्निसा की जीवनी दी गई है और बाद में फारसी काव्य-कला पर कुछ प्रकाश डालकर जैबुन्निसा के शेर, हिंदी-पद्यानुवाद तथा भावार्थ सहित, दिए गए हैं। लेखकों के प्रयत्न स्तुत्य हैं पर वे कवयित्री की कुल रचनाओं में से काफी चयन नहीं कर सके हैं और उन्होंने दूसरों की कविता से आवश्यकता से अधिक उद्धरण दे दिए हैं। प्रेस की अशुद्धियाँ भी हैं,

जैसे मशहूर का मशहूर, सियहबख्ती का सिपहबख्ती। फारसी शब्दों की ऐसी अशुद्धियों से हिंदी-पाठकों को अर्थ समझने में कष्ट होगा। मूल फारसी साथ में न रहने से उसके अर्थ के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। कहीं कहीं मूल दे दिया गया है, जिससे अर्थ मिलान करने पर इस विषय में शंका हो जाती है।

—व्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल० बी०

विज्ञान का रजत-जयंती अंक—हिंदी संसार में विज्ञान की ओर रुचि बढ़ानेवाला पत्र 'विज्ञान' अपने क्षेत्र में अकेला ही है। "विज्ञान-परिषद्" की रजत-जयंती के अवसर पर इस पत्र का विशेषांक प्रकाशित हुआ है। इस अंक के विशेष संपादक प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव हैं। अवसर के अनुकूल ही इस विशेषांक में "परिषद् की योजना" तथा इसका संक्षिप्त इतिहास सुचारु रूप से दिया है। परिषद् के सभापति तथा विज्ञान के कुछ प्रमुख लेखकों की संक्षिप्त जीवनी और उनके चित्र भी दिए गए हैं।

परंतु विज्ञान की असंख्य शाखाओं को देखते हुए यह कहना अनुचित न होगा कि विशेषांक अपने सर्वव्यापी नाम "विज्ञान" को भली भाँति चरितार्थ न कर सका। संभव है, इसका प्रयत्न ही न किया गया हो। अंक मे अधिकांश लेख ज्योतिष तथा व्यवसाय संबंधी हैं। वनस्पति-विज्ञान, भौतिक रसायन तथा रोग-चिकित्सा संबंधी लेख एक एक ही हैं और जीवशास्त्र तथा भूतत्त्वशास्त्र इत्यादि संबंधी लेखों का नितांत अभाव है। इसमें संदेह नहीं कि आधुनिक काल में वैज्ञानिक व्यवसाय की ओर लोगों का झुकाव अधिक हो रहा है और इस दृष्टि से सीमेंट, फल-संरक्षण तथा साबुन विषयक लेख बहुत ही समयोपयोगी हैं। परंतु "ध्रुव घड़ी," "यह प्रसरणशील जगत्", "तारागण और विश्वमंडल" तथा "तारे कितने बड़े हैं" शीर्षक चारों लेख प्रायः समान विषयों पर हैं।

संपादक महोदय प्रोफेसर गोपालस्वरूप जी भार्गव का लेख "लेंगले के कुछ आविष्कार" भानुमती का पिटारा-सा प्रतीत होता है। जैसे कि साधारण साप्ताहिक तथा मासिक पत्रों में एक या दो कालम में नए वैज्ञानिक आविष्कारों के संबंध में कुछ इधर-उधर के असंबद्ध, 'टिटबिट्स' की तरह, छोटे-छोटे रोचक समाचार दे दिए जाते हैं उसी प्रकार भार्गव जी ने भी "सूर्य का रंग क्या है", "हरा रंग प्यारा क्यों लगता है", "जुगनू का प्रकाश" इत्यादि पर थोड़ा थोड़ा लिख दिया है। और इससे भी बढ़कर बात यह है कि लेंगले पर प्रायः आधा पृष्ठ लिखने के बाद भार्गव जी ओमस्टर्ड और एम्पियर पर आ कूदे हैं। लेंगले के "जुगनू के प्रकाश" और ओमस्टर्ड के "विद्युत्चुम्बकत्व" में क्या संबंध है, यह प्रत्यक्ष तो समझ में नहीं आता।

हिंदी में वैज्ञानिक साहित्य का विकास अभी शनैः-शनैः हो रहा है। इस प्रारंभिक अवस्था में इस बात पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है कि अँगरेजी-वैज्ञानिक शब्दों का हिंदी में अनुवाद सुचारु रूप से किया जाय। यह देख बड़ा दुःख होता है कि अभी तक हिंदी में कोई अच्छा वैज्ञानिक शब्द-कोष प्रकाशित नहीं हुआ है। इसके अभाव में विभिन्न लेखकों के अँगरेजी शब्दों के पर्यायवाची हिंदी शब्दों के प्रयोग में विभिन्नता होना स्वाभाविक ही है। परंतु किसी एक ही लेख में एक ही शब्द का दो या और अधिक रूपों में लिखा जाना बहुत ही असंतोषजनक है। विज्ञान के प्रस्तुत विशेषांक में सीमेंट वाले लेख मे अँगरेजी शब्द clinker को जैसे का तैसा ही हिंदी में लिखने का प्रयत्न किया है। परंतु उसे उच्चारण के अनुसार एक ही ढंग से लिखने के बदले भिन्न भिन्न स्थानों पर ३ ढंगों से लिखा है, यथा, क्लिंकर, किलकर और किल्लकर। इसी प्रकार silica को कहीं "सिलीका" और कहीं "सिलिका" लिखा है। फल-संरचण वाले लेख में sulphur dioxide शब्द को कहीं तीन टुकड़ों में अलग अलग लिखा है और कहीं उनके बीच में डैश (—) लगा दिया है। यथा "सलफर डाइ औक्साइड" और "सलफर-डाइ-औक्साइड"। यद्यपि ये बातें देखने

में छोटी ही मालूम होती हैं परंतु प्रारंभ में ही निरीक्षण न करने से इन बातों का प्रभाव बहुत बुरा हो सकता है। 'विज्ञान' जैसे पत्र पर इस संबंध में उत्तरदायित्व बहुत अधिक है।

अन्यथा रजतजयंती अंक अच्छा है। मुखपृष्ठ के नीले रंग में रजत वर्ण का संश्लेष करने का प्रयत्न सुंदर है। अंक के अंत में हिंदी में प्रकाशित वैज्ञानिक पुस्तकों की सूची दी गई है। यह सूची तालिका के रूप में है, जो प्राय: १२ पृष्ठ लंबी है। आशा है, इस सूची से पाठकों तथा लेखकों दोनों ही को लाभ होगा।

अ० गो० मि०

सूचना—समीक्षार्थ प्राप्त पुस्तकों की सूची अगले अंक में प्रकाशित होगी।
—संपादक।

विविध

नागरी-प्रचारिणी सभा और हिंदी-साहित्य-सम्मेलन

संवत् १६५० में नागरी लिपि तथा हिंदी भाषा और साहित्य के प्रचार एवं उन्नति के उद्देश्य से काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई थी। सत्रह वर्ष बाद संवत् १६६७ में कार्य-विस्तार के लक्ष्य से सभा में हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की योजना हुई। फिर प्रयागवालों के उत्साह से सम्मेलन वहीं एक स्वतंत्र संस्था के रूप में केंद्रित हो गया। इन छियालीस वर्षों में सभा के द्वारा हिंदी की बहुत संवृद्धि हुई है और इन अट्ठाईस वर्षों में सम्मेलन के द्वारा उसे बहुत प्रसार और प्रगति मिली है। आज हिंदी गौरवान्वित है। इसका बहुत कुछ श्रेय इन दोनों संस्थाओं को है।

अट्ठाईस वर्षों से प्रायः समान उद्देश्य से सभा और सम्मेलन स्वतंत्र कार्य कर रहे हैं। यद्यपि सभा के द्वारा प्रधानतया हिंदी-साहित्य के कार्य हुए हैं और सम्मेलन के द्वारा प्रधानतया हिंदी प्रचार के। हिंदी का तो दोनों से उत्तरोत्तर हित ही हुआ है। परंतु हमारे विचार से यह हित और व्यवस्थित तथा उन्नत होता यदि दोनों की संयुक्त तथा विशिष्ट सेवाएँ उसे मिलतीं।

हिंदी को आज संयुक्त तथा विशिष्ट सेवाओं की बड़ी आवश्यकता है। मध्यदेश की यह निजी भाषा भारत की परंपरागत प्रमुख भाषा है। हिंद की व्यापक भाषा के अर्थ में इसका हिंदी नाम इतिहास-प्रतिष्ठित है। इसके सहज दो रूप हैं—व्यावहारिक और साहित्यिक। एक मध्ययुग से अनेकानेक देशी-विदेशी शब्दों तथा उक्तियों को अपनाता अनेक शैलियों में साधारण व्यवहार का माध्यम है। दूसरे में देश की परंपरागत प्रधान संस्कृति प्रवाहित है, काव्य तथा शास्त्र के निर्माण निबद्ध हैं और उत्तरोत्तर हो रहे हैं। यह मध्यदेश अर्थात् अंतर्वेद की मातृ-भाषा है और यही भारत के राष्ट्र-

भाषा-पद की सहज अधिकारिणी है, क्योंकि यही सर्वाधिक व्यापक परंपरागत प्रमुख भाषा है और इसके शुद्ध रूप से शेष प्रांतीय भाषाओं का सगा संबंध है। मातृभाषा होने से इसमें स्वाभाविकता और सरसता है, राष्ट्र-भाषा होने से इसमें उदात्तता और गौरव है। हिंदी का हित समस्त हिंदियों, भारतीयों, का व्यावहारिक तथा सांस्कृतिक हित है। अवश्य जिनकी यह मातृभाषा है उन्हें इसका विशेष ध्यान है और उन्हीं का प्रथम कर्त्तव्य है कि इसकी संवृद्धि और प्रगति के लिये यथेष्ट प्रयत्नशील हों। आज इन बातों के विस्पष्ट उल्लेख की बड़ी आवश्यकता है, क्योंकि इनके संबंध में अनेक भ्रम फैल रहे हैं, अनेक व्यर्थ आग्रह उठ रहे हैं और सांप्रदायिक तथा प्रांतीय भाव राष्ट्रीय तथा सर्वहितकारी भावों को धुँधला कर रहे हैं।

एक ओर उर्दू, जो यथार्थतः हिंदी ही है पर अरबी-फारसी शब्दों, उक्तियों तथा शैली के कारण बहुत कुछ विदेशिनी हो गई है, हिंदी की प्रतिस्पर्धिनी बनाई जा रही है, उर्दू ही मुल्क की जबान है यह नारा लगाया जा रहा है और दूसरी ओर राष्ट्रहित के नाम पर हिंदी-उर्दू के समझौते के लिये हिंदुस्तानी की कल्पना की जा रही है। सबसे बड़ा भ्रम और आग्रह तो आज उर्दू के संबंध में ही है जो एक बहुत ही सीमित भाषा है। विडंबना यह है कि जिस समझौते की भाषा की कल्पना की जा रही है और जिसे राष्ट्रभाषा-पद पर बिठाया जा रहा है वह व्यावहारिक हिंदी का ही असंगत उर्दूपन के कारण विकृत रूप है और जिनके कारण विशेषतः हिंदुस्तानी नाम की आवश्यकता समझी जा रही है बहुत कुछ उनके कारण ही हमारी भाषा को हिंदी नाम मिला है। पर हिंदी नाम का इस भाषा से ऐतिहासिक संबंध है। हिंदुस्तानी नाम से आज हिंदी की ही अनेक रूप से हत्या हो रही है। अस्तु। उधर पूर्व में बँगला भाषा ने हिंदी के विरोध की ठानी है और उसे अब यह स्पर्धा हो रही है कि एक बड़े प्रांत की साहित्य-संपन्न भाषा होने के कारण वही राष्ट्रभाषा हो। और दक्षिण में कुछ आंदोलन-कारियों को हिंदी का राष्ट्रभाषात्व न जाने क्यों खटकने लगा है।

हिंदी भाषा के साथ नागरी लिपि पर भी, जो देश की सर्व-मान्य परंपरागत लिपि रही है, आज शंकाएँ हो रही हैं। एक ओर इसे राष्ट्रलिपि के अनुपयुक्त घोषित कर विदेश से रोमन का आवाहन हो रहा है, दूसरी ओर इसे राष्ट्रीय बनाने के लिये इसका सुधार किया जा रहा है। और तीसरी ओर फारसी लिपि अपनी प्रतिस्पर्धा जगाए बैठी है।

अतः आज हिंदी भाषा तथा लिपि के स्वरूप को और इनके पद को सुस्पष्ट तथा सुदृढ़ रूप में देश के समक्ष रखने की बड़ी आवश्यकता है। हिंदी-सेवकों के उत्तरदायित्व आज बहुत बढ़ गए हैं। अनेक और विविध गुरु कार्य उनके आगे हैं। इधर व्यावहारिक हिंदी को सरल, प्रांजल, किंतु मर्यादित रूप देना है और विविध उपायों से इसका देशव्यापी प्रचार करना है। उधर साहित्यिक हिंदी को यथेष्ट पुष्ट और सर्वांग-संपन्न बनाना है जिससे इसमें ज्ञान-विज्ञान की उत्कृष्ट से उत्कृष्ट चर्चा हो सके, कला की सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्यंजना बन सके और इसके भांडार पर हमारी संस्कृति गर्व कर सके। इसके लिये विविध साधनों और सुविधाओं की व्यवस्था की अपेक्षा है। साथ ही नागरी लिपि को उसके पद के अनुकूल प्रतिष्ठित बनाना है।

ये गुरु कार्य बिखरी शक्तियों से साध्य नहीं हैं। सभी व्यक्तियों अथवा संस्थाओं के सभी कार्यों में लगे रहने से तो कोई भी कार्य यथेष्ट संपन्न नहीं हो सकता। समय और शक्ति का सदुपयोग तथा सफलता कर्त्तव्य-विभाजन से ही संभव है। उपर्युक्त समस्याओं और साध्यों के विचार से हिंदी को अब संयुक्त तथा विशिष्ट सेवाओं की बड़ी आवश्यकता है। हिंदी के सौभाग्य से उसकी दो प्रतिनिधि संस्थाओं ने उसकी सेवाओं में प्रतिष्ठा पाई है और उनका घना ऐतिहासिक संबंध है। नागरी-प्रचारिणी सभा और हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का हिंदी को गर्व है। इन्हें अपने व्यक्तित्व को बनाए रखकर ही अब संयुक्त कार्य करना चाहिए और अपने विशिष्ट कर्त्तव्यों का शीघ्र निश्चय कर लेना चाहिए। इनकी शक्तियों का तभी समुचित उपयोग होगा और हिंदी की व्यवस्थित तथा उन्नत हितसाधना होगी।

पहले अधिवेशन के बाद सम्मेलन का अट्ठाईसवाँ अधिवेशन इस बार सभा के निमंत्रण पर काशी में होनेवाला है, सम्मेलन अपनी जन्म-भूमि में आनेवाला है। सभा को हर्ष है, सम्मेलन को उत्साह है। यह एक महत्त्वपूर्ण सुयोग है। इसे यथेष्ट महत्त्वपूर्ण ही सिद्ध होना चाहिए। इस अवसर पर दोनों संस्थाओं की एक संयुक्त-समिति की योजना होनी चाहिए और उसमें दोनों के संयुक्त कार्य करने का संकल्प एवं दोनों के विशिष्ट कर्तव्यों का निश्चय हो जाना चाहिए। हम आशा करते हैं कि सभा और सम्मेलन के इस सम्मिलन से शीघ्र ही हिंदी-संसार में एक नए संघटित युग का उदय होगा और उसकी दिशाएँ नए हर्ष और उत्साह से फूल उठेंगी।

एक लिपि की आवश्यकता

एक लिपि की आवश्यकता के विषय में महात्मा गाँधी ने पुनः आग्रह किया है। 'हरिजन सेवक' भाग ७, संख्या २५ में उनका एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसे हम अविकल उद्धृत करते हैं—

यह सवाल अनेक वर्षों से लोगों के सामने है कि संस्कृत से निकलनेवाली या जिन्हें उसने ग्रहण कर लिया है उन सब भारतीय भाषाओं की लिपि एक होनी चाहिए। इतने पर भी तीव्र प्रांतीयता के इन दिनों में एक लिपि के पक्ष में कुछ भी कहना शायद अप्रासंगिक समझा जावे। लेकिन सारे देश में साक्षरता का जो आंदोलन हो रहा है उसके कारण एक लिपि का प्रतिपादन करनेवालों की बात सुननी ही चाहिए। मैं भी बरसों से एक लिपि का ही प्रतिपादन कर रहा हूँ। मुझे याद है कि दक्षिण अफ्रिका में गुजरातियों के साथ भारत-संबंधी पत्र-व्यवहार में एक हद तक मैंने देवनागरी लिपि का व्यवहार भी शुरू कर दिया था। इसमें शक नहीं कि ऐसा करने से विभिन्न प्रांतों के पारस्परिक संबंधों में बहुत सुविधा हो जायगी और विविध भाषाओं के

सीखने में आज की बनिस्बत कहीं ज्यादा आसानी होगी। देश के शिक्षित लोग अगर आपस में मिलकर विचार करें और एक लिपि का निश्चय कर लें तो सब के द्वारा उसका ग्रहण किया जाना आसान बात हो जायगी। क्योंकि लाखों की तादाद में जो लोग निरक्षर हैं उनको तो इस बात में कोई दिलचस्पी ही नहीं होती कि पढ़ाई के लिये कौन-सी लिपि रखी गई है। अगर यह सुखद सम्मिलन हो जाय, तो भारत में देवनागरी और उर्दू यही दो लिपियाँ रह जायँगी और हरेक राष्ट्रवादी दोनों लिपियों को सीखना अपना फर्ज समझेगा। मैं सभी भारतीय भाषाओं का प्रेमी हूँ। यथासंभव अधिक से अधिक लिपियों को सीखने की मैंने कोशिश भी की है। सत्तर वर्ष की उम्र में भी मुझमें इतनी शक्ति मौजूद है कि अगर वक्त मिले तो मैं और भी भारतीय भाषाएँ सीख सकता हूँ। ऐसी पढ़ाई मेरे लिये मनोरंजन की ही चीज होगी। लेकिन भाषाओं के प्रति अपने इतने प्रेम के बावजूद, मुझे यह कबूल करना ही होगा कि मैं सब लिपियाँ नहीं सीख पाया हूँ। अलबत्ता, अगर एक ही स्रोत से निकली हुई भाषाएँ एक ही लिपि में लिखी जायँ तो बहुत थोड़े समय में विविध प्रांतों की खास-खास भाषाओं का काम-चलाऊ ज्ञान मैं प्राप्त कर लूँगा। और जहाँ तक देवनागरी का सवाल है, सौंदर्य या सजावट की दृष्टि से लज्जित होने जैसी कोई बात उसमें नहीं है। अतः मैं आशा करता हूँ कि जो लोग साक्षरता के आंदोलनों में लग रहे हैं वे मेरे इस सुझाव पर भी कुछ विचार करेंगे। अगर देवनागरी लिपि को वे ग्रहण कर लें, तो निश्चय ही वे भावी संतति के परिश्रम और समय की बचत करके उनकी दुआएँ पा लेंगे।

सभा की प्रगति

पदाधिकारी तथा प्रबंध समिति के सदस्य

गत वार्षिक अधिवेशन में सभा के पदाधिकारियों तथा प्रबंध-समिति के सदस्यों का चुनाव इस प्रकार हुआ—

पदाधिकारी

सभापति—श्री रामनारायण मिश्र

उपसभापति—श्री रामचंद्र शुक्ल

,, ,, श्री रमेशदत्त पांडेय

प्रधान मंत्री—श्री रामबहोरी शुक्ल

साहित्य मंत्री—श्री रामचंद्र वर्मा

अर्थ मंत्री—श्री ब्रजरत्नदास

प्रबंध समिति के सदस्य—

सं० १९९६ तक:
- श्री राधेकृष्णदास
- श्री सहदेवसिंह
- श्री केशवप्रसाद मिश्र
- श्री कृष्णानंद
- श्री गांगेय नरोत्तम शास्त्री
- श्री सूर्यप्रसाद महाजन
- श्री जगद्धर शर्मा गुलेरी

सं० १९९६—९७ तक:
- श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़
- श्री राय कृष्णदास
- श्री सीताराम चतुर्वेदी
- श्री विद्याभूषण मिश्र
- श्री श्रीराम मिश्र
- श्री अयोध्यानाथ शर्मा
- श्री रामेश्वर गौरीशंकर ओझा

सं० १९९६—९८तक { श्री मुरारीलाल केडिया
श्री ठाकुरदास
श्री गोपाललाल खन्ना
श्री शिवकुमारसिंह
श्री दत्तो वामन पोतदार
श्री ब्योहार राजेन्द्रसिंह
श्री सरदार माधवराव विनायकराव किबे }

इस वर्ष आय-व्यय-निरीक्षक श्री बैजनाथ केडिया चुने गए थे किंतु फिर अवकाश न होने के कारण उन्होंने यह कार्य स्वीकार नहीं किया अत: उनके स्थान पर बाबू जीवनदास चुने गए।

प्रबंध समिति के सदस्य श्री गोपाललाल खन्ना के लखनऊ चले जाने के कारण उनके स्थान पर १५—७—३९ के साधारण अधिवेशन में श्री जयकृष्णदास जी सदस्य चुने गए।

उपसमितियाँ

प्रबंध समिति के १०-६-३९ के अधिवेशन में निम्नलिखित उपसमिति बनाई गई—

(१) साहित्य उपसमिति—संयोजक साहित्य-मंत्री
(२) अर्थ उपसमिति— ,, अर्थ-मंत्री
(३) पुस्तकालय उपसमिति—,, तथा निरीक्षक श्री कृष्णदेव-प्रसाद गौड़
(४) संकेतलिपि ,, ,, श्री निष्कामेश्वर मिश्र
(५) लिपि और भाषा ,, ,, श्री चंद्रबली पांडेय
(६) पुस्तक बिक्री ,, ,, श्री सत्यनारायण शर्मा
(७) अर्धशताब्दी ,, ,, श्री रामचंद्र वर्मा
(८) कवियों और लेखकों के चित्र तथा परिचय संग्रह करने के लिये उपसमिति ,, श्री ब्रजरत्नदास

इनके अतिरिक्त दो अस्थायी उपसमितियाँ बनाई गईं। एक सभा के खर्च में कमी करने के लिये, जिसके संयोजक सभा के अर्थ-मंत्री चुने गए; और दूसरी कविसम्राट् पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय तथा पुरोहित हरिनारायण शर्मा बी० ए० (जयपुर) का, उनके ७५ वर्ष पूरे होने पर, अभिनंदन करने के लिये, जिसके संयोजक श्री विद्याभूषण मिश्र चुने गए।

खोज विभाग

इस वर्ष खोज विभाग के निरीक्षक डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल एम० ए०, डी० लिट्० तथा सहायक निरीक्षक श्री विद्याभूषण मिश्र एम० ए० चुने गए।

प्रसाद व्याख्यानमाला के आयोजक

श्री विद्याभूषण मिश्र एम० ए० चुने गए।

संपादक-मंडल

नागरीप्रचारिणी पत्रिका के संपादन के लिये संपादक-मंडल चुना गया जिसके निम्नलिखित सदस्य हैं---

श्री रामचंद्र शुक्ल	डा० मंगलदेव शास्त्री
श्री केशवप्रसाद मिश्र	श्री वासुदेवशरण

श्री कृष्णानंद

मूर्तिमंदिर

सभा के कार्यों के यथोचित विस्तार के लिये स्थान की बहुत बड़ी कमी है। सभा के भारतकला-भवन मे मूर्तिमंदिर के लिये अभी तक केवल एक ही कमरा था। बाकी बहुत-सी मूर्तियाँ आँगन मे खुले स्थान में पड़ी हुई कला तथा संस्कृति के उदार रक्षकों का मुँह जोह रही थीं। आनंद की बात है कि सभा के पुराने सभासद और काशी के उदार-हृदय तथा उत्साही नवयुवक श्री मुरारीलाल केडिया ने इस कमी को दूर करने के लिये सभा को १०००) देने का वचन दिया जिसमें

८५०) उन्होंने दे दिया है। इस रुपये से आँगन के ऊपर छत पाट कर एक सुंदर कमरा बनवाया जा रहा है जो अब प्रायः तैयार हो गया है।

पुस्तकालय

अभी तक सभा के पुस्तकालय में पुस्तकें विषय-क्रम से नहीं रखी गई थीं। यह कार्य पूरा करने तथा कार्ड-प्रणाली से सूची तैयार करने में यद्यपि सभा के सामने कई प्रकार की कठिनाइयाँ हैं जिनमें सबसे बड़ी कठिनाई धन, स्थान तथा आलमारियों की कमी की है जो अब भी दूर नहीं हो सकी है, तथापि सभा ने अब यह कार्य आरंभ करा दिया है और आशा है इस वर्ष किसी प्रकार पूरा हो जायगा।

संकेतलिपि विद्यालय

हर्ष की बात है कि सभा के संकेतलिपि विद्यालय के प्रधाना-ध्यापक श्री गोवर्धनदास गुप्त की नियुक्ति मध्यप्रांतीय एसेंबली में हो गई है। अभी यह नियुक्ति अस्थायी है और आशा है वे स्थायी रूप से नियुक्त कर लिए जायँगे। उनको अपने विषय का अच्छा ज्ञान है और वे बड़े परिश्रमी हैं। विद्यालय की सेवा वे निष्काम भाव से करते रहे हैं।

उनके स्थान पर इस समय श्री परशुराम उपाध्याय और श्री केदारनाथ अष्ठाना संकेतलिपि तथा हिंदी टाइप का अध्यापन-कार्य कर रहे हैं।

पुस्तकों की बिक्री

इस वर्ष सभा की पुस्तकों की बिक्री बढ़ाने के लिये श्री सत्यनारा-यण शर्मा एजेंट नियुक्त किए गए हैं। सभा ने अपनी पुस्तकों के लिये स्थायी ग्राहक बनाने का निश्चय किया है। शर्माजी देश के भिन्न भिन्न स्थानों में यात्रा करके अधिक से अधिक संख्या में स्थायी-ग्राहक बनाने का प्रयत्न करेंगे। इससे पुस्तकों की बिक्री बढ़ने की आशा तो है ही, साथ ही वे सभासदों और सभा के अन्य हितैषियों से समय समय पर मिलते रहेंगे जिससे सभा के साथ उनका संबंध दृढ़तर होगा।

प्रतिनिधिदल

गत वैशाख मास में सभा के सभापति श्रीयुत पं० रामनारायण मिश्र ने ट्रेनिंग कालेज बनारस के प्रो० पं० लालजीराम शुक्ल के साथ सभा के निमित्त धन-संग्रह के लिये मध्यभारत की यात्रा की। पहले वे उज्जैन गए। वहाँ पं० सूर्यनारायण व्यास तथा पं० गोपालकृष्ण शास्त्री ने बड़ी सहायता की। 'कल्पवृक्ष' के संचालक डा० दुर्गाशंकर नागर द्वारा जो उत्साह और सहयोग प्राप्त हुआ उसका वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता।

उज्जैन से प्रतिनिधिदल इंदोर गया और मध्यभारत हिंदी-साहित्य-समिति के मंत्री की कृपा से समितिगृह में ठहरा। 'वीणा'-संपादक पं० कालिकाप्रसाद दीक्षित, राव बहादुर सरदार माधवराव विनायकराव किबे, पं० रामभरोसे तिवारी तथा प्रो० ज्वालाप्रसाद सिंहल से बड़ी सहायता प्राप्त हुई। खेद है कि रियासत में आंदोलन के कारण इंदोर राज्य से कुछ सहायता न मिल सकी।

इंदोर से प्रतिनिधिदल देवास पहुँचा और फिर सीतामऊ, प्रतापगढ़, सैलाना, रतलाम और धार होकर उज्जैन लौटा। वहाँ से भूपाल, छिंदवाड़ा, नृसिंहपुर और सतना होते हुए बनारस आ गया। इस यात्रा में देवास की छोटी पाँती के महाराज, **महाराजकुमार डा० रघुवीरसिंह (सीतामऊ), महाराजा महारावत सर प्रतापसिंह (प्रतापगढ़)** (जिनकी माता जी **स्वर्गीया सूर्यकुमारी** जी की बहन हैं) तथा **श्रीमान् महाराज भरतसिंह (मुलथान)** और दीवान बहादुर केनंदकार (धार) से मिलने का सुयोग प्राप्त हुआ। इन्होंने सभा तथा दल पर बड़ी कृपा दिखलाई।

इस यात्रा में प्रतिनिधि सज्जनों ने हिंदी-प्रचार का बड़ा काम किया। कुछ साधारण सभासदों के अतिरिक्त १ विशिष्ट और १३ स्थायी सभासद बने। जिन महानुभावों से प्रतिनिधिदल को सहायता प्राप्त हुई, सभा उन सब की हृदय से ऋणी है।

१ वैशाख से ३१ श्रावण तक २५) या अधिक दान देने-वाले सज्जनों की नामावली

प्राप्ति-तिथि	दाता	प्राप्त धन	प्रयोजन
१ वैशाख	श्रीमान् उदयपुर-नरेश महाराणा-साहिब भूपाल सिंह बहादुर के० सी० आई० ई०, जी० सी० एस० आई०	२०००)	साधारण व्यय
६ ,,	श्रीयुत क्षेत्रपाल शर्मा, मथुरा	१००)	स्थायी कोष
१४ ,,	श्रीयुत देवनाथ पुरोहित, उदयपुर	१००)	,, ,,
१६ ,,	श्रीयुत पं० मनोहरलाल ज़ुत्शी, काशी	१००)	,, ,,
६ ज्येष्ठ	श्रीयुत लाला रामरतनगुप्त, कानपुर	१००)	,, ,,
१८ ,,	श्री वीरेंद्र केशव साहित्यपरिषद, ओड़छा	१०००)	पुस्तक प्रकाशन
२० ,,	श्रीयुत रा० ब० लालचंद सेठी, उज्जैन	१०१)	स्थायी कोष
२२ ,	श्रीयुत राय कृष्णदास, काशी	१८७॥)	कलाभवन
२३ ,	श्रीयुत पं० रामभरोसे तिवारी, इंदोर	१०१)	स्थायी कोष
२३ ,,	श्रीमान् महाराजा महारावत सर रामसिंह बहादुर, के० सी० एस० आई०, प्रतापगढ़, राजपूताना	१००)	,, ,,

प्राप्त-तिथि	दाता	प्राप्त धन	प्रयोजन
१० आषाढ़	श्री मदनमोहन जैन, उज्जैन	१००)	स्थायी कोष
१२ ,,	श्रीमती पूर्णिमा चाँदमल, लखनऊ	१००)	,, ,,
१३ ,,	श्रीयुत कुमार रणंजयसिंह, अमेठी राज्य, सुलतानपुर	१००)	,, ,,
१६ आषाढ़—४ श्रावण	श्री मुरारीलाल केडिया, काशी	३५८)	भवन-निर्माण
३ श्रावण	रायबहादुर श्रीयुत हरप्रसादजी, अजमेर	१००)	स्थायी कोष
१५ ,,	श्रीयुत ब्रजरत्नदास, काशी	७५)	कवियों और लेखकों के चित्र और परिचय संग्रह के लिये
१७ ,,	रियासत औसानगंज, मारफत कोर्ट आव वार्ड्स, गाजीपुर	३००)	कलाभवन
२२ ,,	श्रीयुत रायसाहब डा० भवानीशंकर याज्ञिक, नैनीताल	१०१)	स्थायी कोष

नोट—जो सज्जन किश्त से चंदा देते हैं उनका नाम पूरा चंदा प्राप्त हो जाने पर प्रकाशित किया जायगा ।